श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति

रचयिता

प्रभुपाद श्रीहरिदास गोस्वामी

Presented by
Narayan Chandra
14/6/50

❀ जय गौर ❀

श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति

[हिन्दी पद्यानुवाद सहित]

रचयिता

प्रभुपाद श्रीहरिदास गोस्वामी

प्रकाशक

आर्यावर्त प्रकाशन गृह,

१०, चौरंगी रोड,

कलकत्ता-१३

ब्रजेर खेला छिल दौड़ादौड़ि।
नदेर खेला धूलाय गड़ागड़ि॥
ब्रजेर खेला छिल वांशीर गान।
नदेर खेला केवल हरिनाम॥
ब्रजेर खेला छिल वन भ्रमण।
नदेर खेला एखार केवल रोदन॥

व्रजका खेल कुलेल मगन मन ।
नदियाका रज लुण्ठित तन ॥
व्रजका खेल मुरलिका वादन ।
नदियाका हरिनाम भजन ॥
व्रजका खेल कुसुम वन विहरण ।
नदियाका दृगजल वर्षण ॥

प्रस्तुत संस्करणका प्रकाशकीय निवेदन

लगभग पन्द्रह मास पूर्व इस करुण काव्यका प्रथम नागरी संस्करण प्रकाशित हुआ था। उस संस्करणमें जल्दीके कारण मुद्रणकी अनेक अशुद्धियाँ रह गई थीं। तो भी उस संस्करणकी एक हजार प्रतियाँ समाप्तप्रायः हैं। इससे अनुमान लगाया जा सकता है कि भावुक भक्तोंको यह काव्य-ग्रन्थ कितना अच्छा लगा। इस द्वितीय संस्करणमें मुद्रणकी भूलें न रहें इसका यथासाध्य ध्यान रखनेकी चेष्टाकी गई है, फिर भी कुछ अशुद्धियां रह जाना स्वाभाविक है जिनके लिये हम विज्ञ पाठकोंसे क्षमाप्रार्थी हैं।

प्रस्तुत संस्करणमें पद्यानुवादकर्ताने कहीं कहीं थोड़ा सुधार भी किया है। इस विलाप गीतिके रचयिता प्रभुपाद श्रीहरिदासजी गोस्वामीकी संक्षिप्त जीवनी प्रथम संस्करणकी

भांति इसमें नहीं दी गई है। उनकी विस्तृत आत्मकथा पुस्तक रूपमें अलग प्रकाशित हो रही है।

इस ग्रन्थका प्रकाशन केवल प्रचार को दृष्टिसे किया गया है। कोई भी भक्त कवि अन्य भाषामें इसका सुन्दर पद्यानुवाद करके इस ग्रन्थका प्रकाशन और विक्रय करना चाहे तो एतदर्थ उसको पूर्ण स्वतन्त्रता है। हम लोगोंसे भी यदि उसमें कुछ सेवा हो सकी तो हमारे लिये यह बड़ी प्रसन्नताकी बात होगी।

विनीत,
रामनिवास ढंढारिया

जगन्नाथ रथयात्रा,
आषाढ़ शुक्ल द्वितीया,
वि०सं०२०२०, शकाब्द १८८५,
बंगाब्द १३७०, गौराब्द ४७७,
रविवार दिनांक २३ जून, १९६३

॥ श्रीहरिः ॥

हिन्दीके प्रथम संस्करणका प्रकाशकीय निवेदन

भारतीय साहित्य-परम्परामें बङ्ग-साहित्यका एक विशिष्ट स्थान है। दैवकी कृपासे बङ्ग प्रदेशकी भाव-प्रवण भूमिपर आत्मरञ्जिनी रस-धाराका प्रवाह प्रायः निरन्तर ही गतिमान रही है, जिसने बङ्ग-साहित्यको सदैव ही अनुप्राणित किया है। प्रस्तुत ग्रन्थ 'श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' भी उसी रस-धारासे उद्भूत करुण-रस-प्रधान एक भावपूर्ण रचना है, जिसकी अवतारणा परम सम्मान्य गोलोकगत श्रीहरिदासजी गोस्वामी महाराज द्वारा बङ्गला भाषामें आजसे लगभग ४६-४७ वर्ष पूर्व गौराब्द ४२९ में श्रीधाम वृन्दावनमें हुई थी तथा उन्हींके द्वारा वृन्दावनसे ही इसका प्रथम

प्रकाशन भी सम्पन्न हुआ था। श्रीपाद हरिदासजी एक सिद्धहस्त रस-मर्मज्ञ लेखक थे। उनके द्वारा वैष्णव साहित्यकी जो सेवा हुई वह चिरस्मरणीय रहेगी। उनका जीवन बड़ा ही प्रेरणाप्रद है। ग्रन्थके आदिमें दिये हुए लेखकके वक्तव्य इत्यादिसे यह स्पष्ट है कि इस ग्रन्थको पाठकोंका पर्याप्त स्नेह मिला। प्रथम संस्करणके शीघ्र समाप्त होने पर इसका द्वितीय संस्करण भी प्रकाशित किया गया।

इस ग्रन्थमें बङ्गालमें अवतरित श्रीगौराङ्ग महाप्रभुके गृह त्यागकर संन्यासी हो जानेपर उनकी निजात्मरूपा अर्धाङ्गिनी श्रीविष्णुप्रियाके अमन्द विरहोद्गारोंका बड़ा ही अद्वितीय एवं मार्मिक वर्णन हैं, जिनकी पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो विश्व-प्रकृतिने अपने सहज-स्वामीके वियोगमें हाहाकार किया हो। जगतके तापोंको गलानेवाली करुणाकी जो अनूठी अभिव्यञ्जना इसमें हुई है, उसका उदाहरण अन्यत्र दुर्लभ है। भावुक-अभावुक, भक्त-अभक्त, सभीको बिना किसी भेदके यह अभिभूत करनेमें समर्थ है। समकालीन पत्रोंमें प्रकाशित

इस ग्रन्थकी प्रारम्भिक समालोचनासे इसके पाठकों पर हुई गम्भीर प्रतिक्रियाका पता चलता है। अनेक पाठकोंको तो इस ग्रन्थके पढ़नेसे करुण रसकी नितान्त अद्भुत अनुभूति हुई थी तथा उनमेंसे कई महानुभावोंने इस ग्रन्थके रचयिताको ऐसी मर्मभेदी वेदनाके चित्रणके लिए उपालम्भ देते हुए निर्मम और निर्दयी तककी उपाधिसे विभूषित किया था।

ऐसी भावपूर्ण एवं उत्कृष्ट रचनाको नागरी लिपिमें उसका लिप्यन्तरण करके हिन्दी पद्यानुवाद सहित हिन्दीभाषी गौर-प्रेमियों और हिन्दी-साहित्य-सेवियोंके रसास्वादनके लिए उपलब्ध करानेकी प्रेरणा और साधन हमें एक सम्मान्य गुरुजनसे प्राप्त हुई, जो शीलवश अनामी रहनेमें ही सुख अनुभव करते हैं। उन्हींकी प्रेरणाके फलस्वरूप यह पुस्तक इस रूपमें आपके समक्ष है।

हमारा विश्वास है कि साहित्यानुरागी सुविज्ञ-जन एवं हिन्दीभाषी गौरप्रेमी हमारे इस प्रयाससे अवश्य लाभ उठायेंगे और हमें प्रोत्साहित करेंगे। यदि श्रीमन्महाप्रभुकी अनुकम्पा हुई तो भविष्यमें

भी हम ऐसी ही रस-सिद्ध रचनाओंको हिन्दीके विशाल पाठक-समुदायके समक्ष लानेकी चेष्टा करते रहेंगे।

फाल्गुन पूर्णिमा, वि० सं० २०१८,
शकाब्द १८८३, बङ्गाब्द १३६८,
गौर पूर्णिमा, गौराब्द ४७६,
बुधवार, दिनाङ्क २१ मार्च १९६२।

विनीत,
रामनिवास ढंढारिया

प्रस्तुत ग्रन्थकी तत्कालीन समालोचनाएँ

(१)

सुप्रसिद्ध 'श्रीविष्णुप्रिया' पत्रिकामें 'विष्णुप्रिया-विलाप-गीति' के विषयमें प्रकाशित समालोचनाः—

"इस ग्रन्थका आकार छोटा होते हुए भी इसमें निहित भाव अत्यन्त मधुर तथा उनकी झंकार विश्व-व्यापी है। बङ्गला भाषामें अबतक बहुत-सी कविताकी पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं, लेकिन उनमेंसे अधिकतर काव्यके लक्षणोंसे वर्जित हैं। 'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' को एक प्रकारसे वास्तविक काव्य कह सकते हैं,—करुण रस इस काव्यका प्राण है। चण्डीदास, विद्यापति आदिकी पदावली भी पढ़ी—विरहविधुरा श्रीराधाका विलाप पढ़ा. लेकिन इस 'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' को पढ़कर तो मनको ऐसा लगा मानो स्वयं सरस्वती महारानीके हाथसे जो वीणा बजी है, उसकी ही यह करुण झंकृति हो। विलापके इस मर्मभेदी आर्तनादके अन्तरमें मानो विश्वके प्राणोंका हाहाकार एकरस हो गया है, इस विरहाग्निके तप्त श्वासोंमें विश्वके तप्त प्राणोंका दीर्घ श्वास जैसे मिश्रित हो गया

है, इसलिए भक्त हो या अभक्त, भावुक हो या भजन-विमुख, जो कोई भी इस विलाप-ध्वनिको सुनेगा, वही द्रवित हो जायगा। इस विलापसे हृदय द्रवित हो जाता है, नयनोंसे प्रेमाश्रु-धारा वह चलती है, कठिन प्राण भी पिघल जाते हैं और मलिन चित्त निर्मल हो जाता है—इस करुण विलापका प्रभाव ही ऐसा है। ऐसा प्रतीत होता है कि विश्व-वासियोंको अपने प्रभावसे आकर्षित करके श्रीमान् महाप्रभुके भजन-साधनकी शिक्षा देनेके लिए ही श्रीविष्णुप्रियाका यह आर्त्तनाद उदित हुआ था। देशके आबाल-वृद्ध-वनिताओंसे इस 'विष्णुप्रिया-विलाप-गीति' का एक बार पाठमात्र करनेके लिए अनुनय-सहित मैं अनुरोध करता हूँ।"

(२)

गोलोकगत महात्मा शिशिरकुमार घोष की परम विदुषी गौराङ्गगतप्राणा भगिनीका मन्तव्यः—

'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' का पाठ करनेसे ऐसा बोध हुआ मानो प्रियाजीने स्वयं आपमें प्रवेश करके ही यह विलाप-कहानी लिखी है, नहीं तो यह इतनी सुन्दर और मर्मस्पर्शी नहीं होती।

(३)

बङ्गीय साहित्य परिषद्के सहकारी सम्पादक श्रीयुत मृणालकान्ति घोषका मन्तव्यः—

'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' का पाठ करते-करते मैं प्रेमविह्वल हो गया। आज यदि बड़े काका (शिशिरबाबू) इस जगत्में होते तो इसका पाठ करते हुए कितने आनन्दाश्रु बहाते, यह कहना कठिन है।

(४)

परम गौर-भक्त श्रीयुत रञ्जनविलास राय चौधरी का मतः—

'श्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' में रचयिताने श्रीविष्णुप्रियादेवीकी एक अभिनय-छवि दिखलाई है। इसकी कल्पना जितनी सुन्दर है, वर्णन भी उतना ही मधुर है। देवीके आत्मत्यागका ज्वलन्त दृष्टान्त इस छोटेसे कविता-ग्रन्थमें मर्मभेदी भाषामें दर्शाया गया है।

(५)

एक ऊँचे पद पर आसीन अंग्रेजी-शिक्षित विशिष्ट राजकर्मचारीने (जिनका नाम प्रकाश में नहीं लाया गया) ग्रन्थकारको लिखा थाः—

"आपका ग्रन्थ पढ़कर मेरी पत्नी तीन दिनों तक लगातार रोते-रोते मूर्च्छा रोगसे ग्रसित हो गई है और मूर्च्छावस्थामें प्रलाप-वाक्य बोलती रहती है—'हा गौराङ्ग! तुम बड़े निठुर हो ! तुमको दयामय कौन कहता है ? तुमने बालिका विष्णुप्रियाको जो दुःख दिया है, उसके लिए तुमको बड़ा ही दुःख पाना होगा।' आपका ग्रन्थ पढ़नेसे मेरी पत्नीकी यह दुरवस्था हो गई है—यदि उसको कुछ हो गया तो इसके उत्तरदायी आप होंगे।"

[प्रसन्नताकी बात यह है कि उस भक्तिमती महिलाको कुछ नहीं हुआ। वह श्रीगौराङ्गके चरणोंका आश्रय लेकर परम आनन्दके साथ श्रीगौर-विष्णुप्रिया युगलरूपका भजन करती रहीं।—ग्रन्थकार]

(६)

श्रीयुत विधुभूषण शास्त्री वेदान्त भूषण, भक्तिरञ्जन महोदयने ग्रन्थकारको लिखा था:—

"देव ! आपकी श्रीमूर्तितो बड़ी सुन्दर है, किन्तु हृदय इतना कठोर क्यों ? कवियोंका स्वभाव ही ऐसा होता है कि उन्हें स्त्रियोंको कष्ट देना अच्छा लगता है। प्रमाणमें—आदि कवि वाल्मीकिने सीतादेवीको, व्यासदेवने द्रोपदी व उत्तराको कितने कष्ट दिये हैं ? हमारे देशमें ही

ऐसा हो—यह बात नहीं है, पाश्चात्य कवियोंका भी ऐसा ही स्वभाव है। सेक्सपीयरने जुलियटको और इसके भी पूर्व होमरने हेलेनाको दुःख दिया था। आपने श्रीमती विष्णुप्रियादेवीको कितना अपार कष्ट दिया है? मैं तो आपके सम्पूर्ण ग्रन्थको पढ़ भी नहीं सका, अश्रुजलसे वक्ष तक भीग गया। आपके कुसुम-कोमल हृदयमें ऐसे हृदय-विदारक भाव आ ही नहीं सकते। निश्चय ही यह उन्हीं निज-जन-निठुर महाप्रभुजीका काम है। उन्हींने आपके द्वारा ऐसा ग्रन्थ लिखवाया है। उन्होंने निश्चय ही आपका ज्ञान हर लिया था। आपकी सूक्ष्म देह उस समय वहाँ नहीं थी। धन्य है आपकी लेखन-शैली! इस शैलीके सामने तो रवि बाबूकी लेखन-कला भी फीकी सी लगती है।"

॥ श्रीश्रीविष्णुप्रिया-वल्लभाय नमः ॥

उत्सर्ग-पत्र

श्रीश्रीगौर-विष्णुप्रिया-युगल-भजन-निष्ठ
श्रीश्रीविष्णुप्रिया-परिवारके
श्रीमान् नृत्यगोपाल गोस्वामीके प्रति—

प्राणोंके निताई !

मेरे लिखे 'श्रीश्रीविष्णुप्रिया-चरितका' पाठ करके तुमने मुझको लिखा था—

"तुमने यह क्या किया ? यही क्या तुम्हारा 'श्रीविष्णुप्रिया-चरित' है ? नहीं, नहीं, तुम भूलते हो । यह तो भक्तप्राणके लिये कालाग्नि है—इसे क्या पढ़ा जा सकता है ? क्या इसके पढ़नेपर प्राण टिक सकते हैं ? यह कभी भी तुम्हारा लिखा नहीं है । मैं तुमको बाल्यकालसे ही जानता हूँ, तुम्हारी तो सर्वदा ही कुसुमके समान कोमल प्रकृति रही है । तुम्हारे कुसुम-कोमल हृदयसे इस प्रकारकी हृदय-विदारक ज्वालामयी भाषाका उदय कभी भी सम्भव नहीं ।

कुसुममें वज्रता, जलमें दाहिका शक्ति, भक्तमें क्षमाहीनता यदि सम्भव हो, तभी समझ सकता हूँ कि यह 'श्रीविष्णुप्रिया-चरित' भी तुम्हारा लिखा है । यह श्रीग्रन्थ भक्तोंके लिए है ही नहीं, भक्त इसे कभी भी पढ़ नहीं सकेंगे । पढ़नेपर उनके प्राण टिकेंगे नहीं । तुम्हारे इस ग्रन्थकी विशेषता, लेखनकी भाषा और भावके समन्वय गुणसे लिखित विषयकी पंक्ति-पंक्ति और अक्षर-अक्षर में एक कैसी अद्भुत उन्मादिनी शक्तिका समावेश हुआ है जिसके पठन व श्रवण मात्रसे पाषाण-प्राण भी पिघल जाते हैं ! तुम्हारे द्वारा जो असम्भव है, वही सम्भव हो गया है । जो असम्भवको सम्भव कर सकते हैं, वेही इसके कर्त्ता हैं । तुम तो केवल निमित्त-मात्र हो । तुमको हिप्नो-टाइज् (Hypnotise) अर्थात् चेतनाहीन करके यह कार्य कराया गया है । मैं दृढ़ताके साथ कह सकता हूँ कि चेतनावस्थामें यह लिखते तो तुम कभी भी बच नहीं सकते थे,—तुम्हारे कोमल प्राण जलकर भस्म हो जाते । जो भी हो, भला मुझ जैसे पाखण्डीके पाषाण-हृदयको द्रवित करने वाली औषधिका तो सृजन हो गया ।"

मेरा उत्तर—'भाई निताई ! मालूम होता है, तुम्हारे मनके भावोंको जानकर मेरे सगे भाईसे भी अधिक गौराङ्गगत-जीवन श्रीमान् नगेन्द्रनाथ लाहिड़ी, बी० एल०, वकीलने मुझे लिखा है—

"एक विचार मनमें उठ रहा है जिसे आपसे कहे बिना नहीं रहा जाता। वह यह है—मैं सोचकर भी यह निश्चय नहीं कर पा रहा हूँ कि आपने कैसे 'श्रीविष्णु-प्रिया-चरित' लिखा। मैं इस श्रीग्रन्थके सारे स्थल नहीं पढ़ सकता, कारण कि मेरेमें यह शक्ति नहीं है। इस श्रीग्रन्थके पढ़नेके लिये अत्यधिक शक्तिकी आवश्यकता है। महादेवजीने पार्वतीजी से कहा था कि समस्त ब्रह्माण्डका जितना भी सुख-दुःख है, यदि वह सब एकत्रित कर दिया जाय तो भी वह श्रीमती राधाजीके सुख और दुःखके एक कणके समान भी नहीं हो सकता। आपके श्रीग्रन्थको पढ़ कर मुझे उसी बातका स्मरण हो आया। आपके हृदयमें आनन्द प्राप्त करनेकी शक्ति जितनी अधिक है, उतनी ही अधिक दुःख सहन करनेकी सामर्थ्य भी है। मैं क्षुद्र-प्राण हूँ, मेरी क्षुद्र शक्तिसे इस श्रीग्रन्थका पाठ सम्भव नहीं।"

मैं कहता हूँ—

"मेरा हृदय पत्थरकी अपेक्षा भी कठिन है, वज्रका बना है, मैं निर्मम हूँ, निर्दय हूँ, नहीं तो यह सब पाषाण-भेदी, हृदय-विदारक करुण-ध्वनि-पूर्ण प्रियाजीका आर्त्तनाद विस्तार करकर कैसे लिख पाता ? यह समस्त दुःख-कथा—यह सारी मनकी व्यथा लिखनेको बैठते हुए मेरे प्राण विदीर्ण क्यों नहीं हो गये ? मेरे प्राण बड़े कठोर हैं—हृदय वज्र है, इसको और बतानेकी आवश्यकता नहीं ।

'श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति' श्रीग्रन्थमें चौदह वर्षकी बालिका प्रियाजीके श्रीमुखसे हृदयविदारक, भीषण विलाप-ध्वनि सुनकर तुम मुझे और क्या कहोगे,—मैं यह सुनना चाहता हूँ । मेरे पापोंका प्रायश्चित्त पूर्ण होना आवश्यक है । इसीलिये यह श्रीग्रन्थ तुम्हारे करकमलोंमें अर्पण करके पापोंके प्रयश्चित्तके फलकी आशामें बैठा हूँ । तुम प्रियाजीके निज-जन हो, श्रीश्रीनवद्वीपचन्द्र तुम्हारे घरके बालक हैं, तुमलोग उनको जो चाहो कह सकते हो । श्रीप्रियाजीकी करुण विलाप-कथा श्रीश्रीविष्णुप्रिया-

वल्लभको सुनानेके लिए तुम ही उपयुक्त पात्र हो। कृपा करके यह कार्य कर दोगे क्या? कठोर हृदयकी निर्ममताके लिए मुझे सौ बार गाली दो, उसके लिये मेरा कोई आक्षेप नहीं है। किन्तु बात तो ध्रुव सत्य है, प्रियाजीकी दुःख-कथा अत्यन्त मर्मस्पर्शिनी है, इसको तो स्वीकार करना ही होगा। सत्य कथा सदा ही अप्रिय लगती है, ऐसा होता ही आया है। फिर सच्ची बात कहनेमें भय क्या? अपने उस 'निर्लज्ज निमाई' को यह सच्ची बात क्या तुम नहीं सुना सकोगे।"

प्रियाजी-दुःख-कातर,
तुम्हारा हतभाग्य,
दीनहीन हरिदास

श्रीधाम वृन्दावन,
१ अश्विन गौराब्द ४२६।

मङ्गलाचरण

(मूल बंगला)

गौर-वक्ष-विलासिनी अयि विष्णुप्रिये !
कलिर जीवेर प्रति देख मा चाहिये ॥
नित्य हाहाकारे तारा कातर अन्तर ।
त्रिताप ज्वालाय दग्ध क्लिष्ट-कलेवर ॥
मलिन मनेर भाव कठिन हृदय ।
केमने हइबे ताहे गौर-प्रेमोदय ॥
तुमि मा करुणामयी पतितपावनी ।
कलिर कलुष-हरा राङ्गा पा दु'खानि ॥
तोमार चरण बिना नाहि आर गति ।
कृपा करि कलिजीवे दाओ मा सुमति ॥
प्रकृति भजन पथ दिया देखाइया ।
भक्तिहीन सन्तानेर शुद्ध कर हिया ॥

मङ्गलाचरण

(हिन्दी अनुवाद)

हे गौर-वक्ष-विलासिनी ! हे देवि ! हे विष्णुप्रिये !
कलिकालके इन प्राणियोंको ओर माँ ! दृग फेरिये ॥
नित्य हाहाकारसे हो रहा अन्तःकरण कातर ।
दग्ध ज्वालामें त्रितापोंके कलेवर क्लेश-जर्जर ॥
मलिन मनकी भावनाएँ,हृदय प्रस्तर-सा कठिन अति ।
प्रेमका होगा उदय किस भाँति उसमें गौरके प्रति ॥
पतित-पावनकारिणी माँ! मूर्ति तू करुणा विनिर्मित ।
कलि-कलुष-हारी तुम्हारे चरण दोनों राग-रञ्जित ॥
सिवा चरणोंके तुम्हारे नहीं कोई दूसरी गति ।
कृपाकर कलिजनोंको माँ ! दीजिए मङ्गलमयी मति ॥
सहज स्वाभाविक भजनके राजपथका कर प्रदर्शन ।
शुद्ध करदो हृदय संततिका न जिनके भक्तिका धन ॥

কলির জীবের হৃদে নাহি প্রেম-গন্ধ।
প্রেমভক্তি শূন্য তারা তার্কিক ভ্রমান্ধ॥
কলির অধম জীব না চিনি তোমারে।
ভাসিতেছে অবিরত দুঃখের পাথারে॥
শান্তিময়ী তুমি মাগো শান্তি দাও মনে।
অধম সন্তান বলি রাখ গো চরণে॥
দূর করি ভ্রম তম,–দাও প্রেম ভক্তি।
শক্তিরূপী কৃপাময়ী! সঞ্চারহ শক্তি॥
গৌরাঙ্গ-ভজন পথে তুমি মা আশ্রয়।
তোমার চরণ-চিন্তা সুখের আলয়॥
কাতর কলির জীবে কর মা করুণা।
আন্ নাহি জানে 'হরি' তব পদ বিনা॥

प्रेम-सौरभ नहीं कलिके प्राणियोंके हृदय भीतर।
वे कुतर्की, प्रेम भक्ति-विहीन, भ्रमपट लोचनों पर ॥
कलिकालके प्राणी अधम तुमको नहीं पहचान कर।
दुःख-पारावारमें हैं डूबते रहते निरन्तर ॥
शान्तिकी तुम मूर्ति माता! शांति-रस मन-कलश ढालो।
ज़ान कर संतानको निज अधम, चरणोंमें बसा लो ॥
दूर कर भ्रमका अँधेरा प्रेमभक्ति प्रदान कर दो।
शक्ति-रूपिणि! कृपा-प्रतिमे! कृपा करके शक्ति भर दो ॥
गौरहरिके भजन-पथमें एक माँ ! तेरा सहारा।
सकल-सुख-भण्डार अम्बे! बस चरण-चिन्तन तुम्हारा ॥
जननि! कलिके जीव कातर उपरि करुणा-घटा बरसे।
बिना तव पदके नहीं 'हरिदास' का नाता अपरसे ॥

श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति

[बङ्गला मूल]

[१]

कोथा तुमि गेले नाथ ! नदीया छाड़ि' ?
शून्य हेरि तोमा' विना ए घर बाड़ी ॥
जे दिके फिराइ आँखि,
गौरहारा धरा देखि,
पशु पाखी सकलेरि नयने बारि ।
वृक्षलता तृण काँदे,
ना हेरि नदेर चाँदे,
फुकारि फुकारि काँदे कुलेर नारी ॥
शिशुते ना स्तन खाय;
गाभीते ना गोठे जाय,
उठेछे रोदन-ध्वनि हृदि-विदारी ।
केन तुमि गेले नाथ ! नदीया छाड़ि' ?

॥ श्रीश्रीविष्णुप्रियावल्लभाय नमः ॥

श्रीश्रीविष्णुप्रिया-विलाप-गीति

[हिन्दी पद्यानुवाद]

[१]

नदियाको तुम नाथ ! छोड़कर कहाँ सिधारे ?
सब सूना घर-द्वार दीखता बिना तुम्हारे ॥
दृष्टि जिधर भी ले जाती हूँ,
गौर-विहीन मही पाती हूँ,
विकल सकल पशु-पक्षि-वृन्द भी आँसू ढारे ।
वृक्ष-लता-तृण करते क्रन्दन,
न कर प्राप्त नदिया-विधु-दर्शन
फूट-फूट कर कुल-ललना घरमें चिक्कारे ॥
स्तनसे शिशु-गण मुँह न लगायें,
नहीं गोठमें जातीं गायें,
रही रुदन-ध्वनि ऐसी उठ जो हृदय विदारे ।
नदियाको तुम नाथ ! छोड़ किस लिए सिधारे ?

[२]

कि दुख पाइया तुमि नदे' छाड़िले ?
से कथा खुलिया मोरे नाहि बलिले ॥
लोके बले कत कथा,
ता'ते पाइ मने व्यथा,
नारीर मरर्म-व्यथा नाहि बुझिले ।
ना बलिया च'ले गेले,
अभागी दासीरे फेले,
दया माया भालबासा सब भुलिले ॥
नदीयाय सुख भुलि,
कोथाय गेले हे चलि,
साधेर संसार-सुखे बाद साधिले ।
कि दुख पाइया तुमि नदे' छाड़िले ?

[२]

कौन दुःख पा त्याग दिया तुमने नदियाको ?
खोल कही वह बात न दासी विष्णुप्रियाको ॥
जगती नाना बात बनाती,
सुन-सुन जिनको फटती छाती,
समझ न पाये तुम अबलाकी मर्म-व्यथाको !
चले गये पर गये न कुछ कह,
परिचारिका अभागिनि तज यह,
भूल गये तुम प्रीति-रीति सब दया-मयाको ॥
नदियाके सुखको बिसराकर,
चले गये हे ! कहो कहाँ पर,
चले ढहा मनचाहे भव-सुख-मय कुटियाको ।
कौन दुःख पा त्याग दिया तुमने नदियाको ?

[३]

किबा अपराध ह'ल चरणे तव ?
के बुझाये दिबे मोरे' काहारे क'ब ?
दण्डे दण्डे तिले तिले,
अपराधी पदलते,
तोमार मनेर मत कि क'रे ह'ब ?
निज गुणे ल'येछिले,
तबे केन फेले' गेले,
मने मने ए यातना कत क' स'ब ?
पदसेवा योग्या नहि,
ताइ जे सरमे रहि,
मरम वेदना कत नित्य नव ?
किवा अपराध ह'ल चरणे तव ?

[३]

वना कौन अपराध चरण-प्रति, जान सकूंगी ?
कौन मुझे समझाये, मैं भी किसे कहूँगी ?
अपराधिनि हूँ घड़ी-घड़ी पर,
जीवनकी प्रत्येक कड़ी पर,
मनोऽनुसार तुम्हारे मैं किस भाँति बनूंगी ?
थे अपने गुणसे अपनाये,
फिर क्यों मुझको छोड़ सिधाये,
कितनी मन-ही-मन यातना कठोर सहूँगी ?
योग्य नहीं पदकी सेवाके,
रही बीच धँस इस लज्जाके,
मर्मवेदना कितनी नित्य नयी झेलूंगी ?
बना कौन अपराध चरण-प्रति, जान सकूंगी ?

[४]

दगध कपाल मोर अभागी आमि ।
ता' ना ह'ले केन नाथ ! छाड़िबे तुमि ?
आमार कपाल भाङ्गा,
ना पेनु चरण राङ्गा,
सेविते जनमावधि' प्राणेर स्वामी ।
पेये धन हारा'लाम,
के राखे नारीर मान,
ताइ भावि काँदि आमि दिवस यामि ॥
कि जानि कि मने करि,
दुःख दिले हृदि भरि',
जनम दुखिनी क'रे राखिले तुमि ।
दगध कपाल मोर अभागी आमि ॥

[४]

मेरा भाग्य भस्मचय निश्चय मैं अभागिनी ।
नहीं भला, क्यों तुम तज देते निजार्द्धाङ्गिनी ?
पड़ी भाग्यमें दीर्घ दरारें,
मिली प्राणपति, नहीं तुम्हारे
अरुण चरणकी सेवा जीवन-अवधि-व्यापिनी ।
जब न मिला धन रहा सँभाले,
कौन मान अबलाका पाले,
यही विचार विलखती रहती दिवस-यामिनी ॥
क्या जाने क्या मनमें ठाना,
दुःख दिया मुझको मनमाना,
बैठा गये हृदय जन्मावधि दुःख-नागिनी ।
मेरा भाग्य भस्मचय निश्चय मैं अभागिनी ॥

[५]

वृद्धा जननी तव मरे काँदिया।
ताँर दुःख देखि मोर विदरे हिया॥
(ताँरे) बुझा'वार किछु नाइ,
मुखे शुधु 'हा निमाइ' !
पागलिनी मत छोटे सारा नदीया।
हेरिया पराण ज्वले,
निज दुःख जाइ भूले,
(विधि) गठिल कि तव हृदि पाषाण दिया ?
बूझिले ना मा'र दुःख,
हृदि-ज्वाला भरा बुक,
नदीयार लोक सब करिछे' छिया।
वृद्धा जननी तव मरे काँदिया॥

[५]

प्राण दे रहीं वृद्धा जननी तव क्रन्दन कर।
फटता मेरा हृदय, दुःख वह अवलोकन कर॥
नहीं बँधानेको कुछ ढाढ़स,
"हाय निमाई रे!" मुखमें बस,
उन्मत्ता-सी नदिया भरमें खातीं चक्कर।
देख प्राण लगते हैं तपने,
याद नहीं आते दुख अपने,
सच क्या विधिने गढ़ा हृदय तव लेकर पत्थर ?
माँका भी दुःख न समझ सके,
प्रज्वलित हृदय, उरमें धधके,
छी-छी-छी कर रहे सभी जन हैं नदिया भर।
प्राण दे रहीं वृद्धा जननी तव क्रन्दन कर॥

[६]

कत दिन जीवे माता तव विरहे ?
ए वृद्ध वयसे दुख कत वा सहे ?
चिते यदि छिल आश,
भाङ्गिते नदेर वास,
दु'चारि वरष केन र'ले ना गेहे ?
जीवनान्त ह'ले मा'र
जाइत माथार भार,
जा' खुसी करिते तुमि', के तोमा' कहे ॥
मुख चेये जननीर,
बहे मोर आँखि नीर,
तोमार विरह आमि पासरि देहे ।
कत दिन जीवे माता तव विरहे ?

[६]

कितने दिन ले विरहका माँ जीयेंगी भार ?
जरा-जीर्ण तन सहेगा कब तक दुःख अपार ?
थी यही हृदय लालसा अगर,
देना उजाड़ नदियाका घर,
तो क्या सकते थे नहीं ठहर बरस दो-चार ?
माँकी छाया उठ जाने पर,
जाता मस्तकसे भार उतर,
कौन रोकता तब तुम्हें, करते रुचि अनुसार ॥
माँके मुखकी ओर देख कर,
आँखोंसे जल बहता झर-झर,
मैं भूलूं तव विरह-दुख, उनकी दशा निहार ।
कितने दिन ले विरहका माँ जीयेंगी भार ?

[७]

जननीके दुख दिये धरम ह'वे ।
ए विधिके दिले तोमा,—ए विश्व भवे ?
हारानिधि छिले मा'र,
गेछे ताँर पानाहार,
पुत्र ह'ये तुमि ताँर पराण ल'बे ।
ए बड़ धरम तव,
आमि आर किबा क'ब,
तुमिइ विचार करि,—देखह भेवे' ॥
जीवने ना दिले सुख,
दुखिनी मातार मुख—
मरिलेओ देखिबे ना,—लोके कि क'बे ?
जननीके दुख दिये धरम ह'वे ?

[७]

धर्म-विटप—माँको देनेसे दुःख, फलेगा।
किसने दिया विधान जगतमें, कौन कहेगा ?
थे जगमें माँके खोये धन,
उनका छूटा है पान-अशन,
सुत-करसे क्या जननी-जीवन-दीप बुझेगा ?
गुरु धर्म तुम्हारा यही अगर,
मैं कहूँ कौन फिर बात अपर,
तुम्हीं विचारो-सोचो—क्या यह शोभा देगा ?
जीते जी तो नहीं दिया सुख,
बेचारी दुखिया माँका मुख—
लखोगे न मरने पर भी क्या जगत कहेगा ?
धर्म-विटप—माँको देनेसे दुःख, फलेगा ?

[८]

जननीर दुख देखे' पराण फाटे।
कि काण्ड करेन तिनि,—स्नानेर घाटे ॥
(ओगो) एसे तुमि जाओ देखे,
कि शेल बिंधेछे बुके,
तोमार विहने माता कि माथा कोटे।
पराण फाटिया जाय,
शुनि मुखे 'हाय हाय,
कपाल भाङ्गिया गेल,—आघात चोटे ॥
पोड़ा काठ अङ्ग खानि,
चोखेते पड़ेछे छानि,
देखिते ना पान किछु,—घाटे ओ बाटे।
जननीर दुख देखे पराण फाटे ॥

[८]

होते प्राण विदीर्ण दुःख जननीका लखकर।
क्या करतीं वे काण्ड नहानेवाले तटपर॥
आओ हे! जाओ न निरख कर,
सेल विंधा कैसा उर भीतर,
भाल कूटतीं कैसे हुईं विरहसे कातर।
प्राणोंमें पड़ रही दरारें,
सुन कर उनकी करुण पुकारें,
है कपाल फट गया बहुत चोटें खा-खाकर॥
दग्ध-काष्ठ सम तन सब काला
हुआ, पड़ा आँखोंमें जाला,
घाट-बाटपर उन्हें न कुछ होता दृग्गोचर।
होते प्राण विदीर्ण दुःख जननीका लखकर॥

[६]

"हा निमाइ ! यो निमाइ !" सदाइ मुखे।
दर दर आँखि-धार झरिछे बुके ॥
जाहाके देखेन पथे,
सानुनये विधिमते,
जतनें पूछेन तुमि आछ त सुखे।
जे आसे नदीया धामे,
मा भावेन तोमा जाने,
कत कथा जिज्ञासेन निकटे डेके' ॥
केंदे जे आकुल हन,
कखन वा अचेतन,
कखन देखेन तोमा आड़ाले थेके।
"हा निमाइ ! यो निमाइ !" सदाइ मुखे ॥

[६]

"हाय निमाई! अरे निमाई!!" सदा अधरपर।
आँखोंसे धारा झरती छाती पर झर-झर॥
जिसे देखतीं पथ पर आते,
सविधि उसीसे विनय दिखाते,
तुम तो सुखसे हो न ?—पूछतीं घुमा-घुमाकर।
नदिआमें आते जो भी जन,
तुम्हें जानते वे—माँ के मन,
कितनी उनसे बात पूछतीं निकट बुलाकर॥
रो-रो कर आकुल हो जातीं,
कभी चेतना तक खो जाती,
कभी ओटमें खड़ी देखतीं तुमको छिपकर।
"हाय निमाई! अरे निमाई!!" सदा अधरपर॥

[१०]

कखनओ वा जडवत आकाट् ह'ये।
आमार मुखेर पाने देखेन चे'ये॥
लाजे म'रे जाइ आमि,
सरे ना मुखेते बाणी,
कि ह'लो भाविया आमि,—मरि जे भये।
मायेर मुखेर पाने,
चाहिते ना पारि केने,
(जेन) शत अपराधी आमि,—ताँहार पाये॥
आमारि कपाल दोषे,
छेड़' तुमि गृह वासे,
दिले गो ए दुखराशि,—दुखिनी माये!
प्रति पले काँदे माता बुकेर घा'ये॥

[१०]

कभी कभी निर्जीव बनी जड़ताको धारे।
मेरे मुखकी ओर लगा टकटकी निहारें॥
मैं हूँ लज्जामें गड़ जाती,
मुखसे कोई बात न आती,
सोच हुआ क्या ? मरती मैं उस डरके मारे।
किस कारण मैयाके आनन
ओर न उठते मेरे लोचन,
शतापराधिनि मैं उनके पद-मन्दिर द्वारे॥
दोष ; भाग्यका मेरे सारा
तुमने घरसे कसा किनारा,
दुःख-राशिमें दबा गये माँ-प्राण दुखारे।
प्रतिपल मैया हृदय घावसे चीखें मारे॥

[११]

निशिते चमकि उठि तोमारे डाके।
बिछानार चारि-धार खुँजिते थाके॥
निमाइ निमाइ ब'ले,
डाके तोमा' आँखि जले,
कखनओ वा चूल छिंड़े' बदन ढाके।
कोलेर भितरे मोरे,
टानिया आदर करे,
फेलेछ आमारे तुमि बड़ विपाके॥
कि करि, कोथाय जाइ,
कि करे' बुझाइ माय,
कि क'रे दुखिनी मा'र पराण थाके?
(तिनि) निशिते चमकि उठि तोमारे डाके॥

[११]

उठकर, चौंक निशामें देतीं तुमको हाँकें।
चारों ओर बिछावनके निज खोजें झाँकें॥
"निमू ! निमाई रे !!" कह-कहकर,
तुम्हें बुलातीं आँसू भर-भर,
कभी खींचतीं केश, कभी मुख अपना ढाँकें।
मुझको निज गोदीके भीतर,
खींच लाड़ करतीं हैं सादर,
डाल गये तुम मुझे बीच भारी विपदाके॥
क्या मैं करूँ, कहाँ पर जाऊँ,
कैसे मैयाको समझाऊँ,
क्या करनेसे बचें प्राण इन दुखिया माँके ?
उठकर, चौंक निशामें देतीं तुमको हाँकें॥

[१२]

दिन रात द्वारे बसि' सुधान सबे।
"आमार निमाइ घरे आसिबे कबे ?"
जा'के ता'के एइ कथा,
कि दारुण मनव्यथा,
तुमि सुधु बुझिले ना,—कि ह'बे तबे ?
पाखिटि देखिले माता
कहेन तोमार कथा,
तरुलता गला धरि' काँदेन जबे—
पराण छिड़िया जाय,
शुनि मुखे हाय हाय,
मने भावि कबे मोर मरण ह'बे ?
दिन रात द्वारे बसि' काँदेन जबे॥

[१२]

पूछा करतीं सबसे निशि-दिन बैठ द्वारपर,
"आजायेगा लौट निमाई मेरा कब घर ?"
जो भी हो उससे यही कथा,
कितनी दारुण यह मनोव्यथा,
क्या होगा तब ?–समझा इसे नहीं तुमने भर ।
जब माँ लख कोई नभचारी,
कहने लगतीं कथा तुम्हारी,
क्रन्दन करतीं विटप-बेलिको गले लगाकर ॥
होते प्राण विखण्डित कट-कट,
हाय-हायकी सुन मुखसे रट,
होगा कब मम मरण ?–सोचती मैं मन भीतर ।
क्रन्दन करतीं बैठ द्वारपर जब निशि-वासर ॥

[१३]

स्वपने हेरिये तोमा' काँदेन कत।
जत वा काँदेन माता,—डाकेन तत॥
पाशे आमि थाकि शुये,
कोलेते टानिये निये,
बिनाइया बले माता यातना जत।
आमारे भाविया छेले,
घुमो ख'न प्राण खुले',
कि क'रे सहि गो आमि,–वेदना शत॥
बलिते ना पारि ताहा,
हृदि माझे आछे जाहा,
दुःखराशि दिले तुमि,—मातारे जत।
(तिनि) स्वपने हेरिये तोमा काँदेन कत॥

[१३]

देख स्वप्नमें तुम्हें कलप कितना चिल्लातीं !
क्रन्दन करतीं जितना, उतनो बार बुलातीं ।।
मुझे पासमें सोयी पाकर,
खींच कलेजेसे चिपटाकर,
ब्यौरेवार यातना माता मुझे सुनातीं ।
मनमें बेटा मुझे समझकर,
लेतीं मेरा चुम्बन जी भर,
शत शत व्यथा सहूँगी कैसे ?—समझ न पाती ।।
मुझसे तो वह कही न जाती,
जिस ज्वालासे जलती छाती,
दुःख राशि दी जितनी माँको, सही न जाती ।
देख स्वप्नमें तुम्हें कलप कितना चिल्लातीं ।।

[१४]

घुमेर घोरेते तिनि कतइ बकेन।
तोमार गुणेर कथा कतइ बलेन॥
कभु वा घुमेर घोरे,
उठिते प'ड़ेन द्वारे,
ओछोट् खाइया माता,–दुयारे बसेन।
किछु ना बलेन मोरे,
बुक भासे आँखि लोरे,
आँधारे आँधारे गिये दुयार खोलेन॥
पिछु पिछु आमिं धाइ,
किछु ना भाविया पाइ,
ए घोर निशाय केन एमन करेन?
घुमेर घोरेते तिनि कतइ बकेन॥

[१४]

भरी नींदमें वे कितना बकती-चिल्लातीं ।
एक तुम्हारे गुणकी गाथा रटती जातीं ॥
कभी भरी निद्रामें उठकर,
गिर पड़ जाती हैं भवन-द्वार पर,
खा पछाड़, माँ बैठ द्वारपर ही हैं जाती ।
मुझसे भी कुछ बात न कहतीं,
छाती आँसूसे तर रहती,
द्वार-कंपाट अँधेरेमें जा अलग हटातीं ॥
पीछे पीछे दौड़ी जाऊँ,
कुछ भी नहीं सोच मैं पाऊँ,
ऐसी घोर निशामें करतीं क्यों इस भाँती ?
भरी नींदमें भी कितना बकतीं-चिल्लातीं ॥

[१५]

भोर ह'ले देखि मा'र कपाल फूला ।
लेगेछे आघात सब आङ्गुल गुला ॥
बूक फेटे जाय देखे,
अधीर तोमार शोके,
असाड़ 'सरब-अङ्ग आपन-भुला ।
कि सेवा करिते पारि,
माथा कूटे केंदे मरि,
ए मोर पाषाण देह जाउक चुला' ॥
केन ना मरण ह'ल,
ए काण्ड देखिते र'ल,
काँदि आर लइ मा'र चरण-धूला ।
(आमि) भोर ह'ले देखि मा'र कपाल फूला ॥

[१५]

माँके मस्तकपर उठ भोर देखती सूजन।
कोई उँगली नहीं लगी हो जिसपर चोट न ॥
फटती छाती देख-देखकर,
उन्हें तुम्हारे दुखसे कातर,
निजकी सुध-बुध रही नहीं, सब अङ्ग अचेतन।
कैसे सेवा सकती है बन,
कूटूँ भाल, मरूँ कर क्रन्दन,
पड़े भाड़में मेरा यह पाषाण-घटित तन ॥
क्यों न कालने ली घड़ियाँ गिन,
बची देखनेको जो यह दिन,
माँका पद-रज लेती, करती रहती क्रन्दन।
माँके मस्तकपर उठ भोर देखती सूजन ॥

[१६]

तुमि यदि आमि हओ बुझिबे तबे।
आमार दुखेर कथा शुनिबे जबे॥
दिये गेछ सेवा-भार,
तोमार ए बुड़ा मा'र,
कि सेवा करिले ताँर,—ए दुख जा'बे ?
तुमि ता विचार करे,
देखा दिये बल मोरे,
ताइ करि' काटाइब जीवनी भवे॥
तोमार मायेर सेवा,
ए भाग्य पाय केवा,
अभागिनी बलि' बुझि दियेछ भेवे।
तुमि यदि आमि हओ बुझिबे तबे॥

[१६]

समझ सकोगे मुझको तुम केवल 'मैं' बनकर।
जब हो मेरी दुःख-कथा तुमको श्रुति-गोचर ॥
सेवा-भार गये हो देकर,
अपनी वृद्धा माँका मुझपर,
करूँ कौन सेवा उनकी, जो ले यह दुख हर ?
तुम्हीं कर विचार अब इसपर,
मुझे बतादो दर्शन दे कर,
भवमें जीवन को काटूँगी वैसा ही कर ॥
तव, जननी-सेवाका अवसर,
मिले, भाग्य ऐसा हो क्योंकर,
जान अभागिन मुझको है यह दिया मनन कर।
समझ सकोगे मुझको तुम केवल 'मैं' बनकर ॥

[१७]

निज सेवा अधिकार दिले ना तुमि ।
मातृ-सेवा करिते जे ना पारि आमि ॥
का'रे वा यतन करि,
कि यातना हरि हरि !
दिनान्ते ना दिते पारि अन्न पानि ।
राते ताँर घूम नाइ,
सर्व्व अङ्गे माखे छाइ,
माथाय धूलार राशि,—मुखे नाइ वाणी ॥
राजराणी भिखारिणी,
तोमा तरे पागलिनी,
कि क'रे यतन करि,—आमि कि जानि ।
(मोरे) निज सेवा अधिकार दिले ना तुमि ॥

[१७]

प्रिय ! सौंपा तुमने निज-सेवा-अधिकार नहीं ।
जननीकी सेवा लगती मुझसे पार नहीं ।।
किस भाँति सेविका यत्न करे,
किंभूत यातना हरे हरे,
संध्या तक पाती दे जल-कण, आहार नहीं ।
नहीं यामिनीमें सो पातीं,
सकल अङ्गमें राख रमातीं,
रज-राशि भरा सिर, मुखसे शब्दोच्चार नहीं ।।
बनी राजरानी भिखारिनी,
हुई तुम्हारे हित पागलिनी,
क्या यत्न करूँ, कर पाती ठीक विचार नहीं ।
प्रिय ! सौंपा तुमने निज-सेवा-अधिकार नहीं ।।

[१८]

यदि धुला झाड़ि' दिये नाइते बलि।
"निमाइ! निमाइ" करि काँदेन फुलि'॥
तेलेर बाटीटि निये,
काछे यदि जाइ धेये,
तथा ह'ते कोथा जा'न,—उठिया चलि।
छिन्न बसन खानि,
ना छाड़ेन कभु तिनि,
जप तप पूजा पाठ,—गेछेन भुलि'॥
तव नाम करि सार,
बहेन जीवन भार,
शयने स्वपने शुधु 'निमाइ' बुलि।
जखन तखन तिनि काँदेन फुलि'॥

[१८]

यदि मैंने रज झाड़ स्नान की बात चलाई।
फूट-फूटकर रोतीं, रटतीं 'निमू ! निमाई !!'
तेल-कटोरी करमें लेकर,
जाती हूँ समीप यदि सत्वर,
उठकर जातीं चली जगहपर बिना बताई।
तनके वसन फटे हैं सारे,
कभी न जाते किंतु उतारे,
जप-तप, पूजा-पाठ—सभीपर विस्मृति छाई॥
तुम्हारा नाम मान कर सार,
वहन करतीं जीवनका भार,
सोते, स्वप्न देखते, बस, रट लगी 'निमाई'।
जभी देखती तभी बिलखती रहतीं माई॥

[१६]

जे घरे शुइते तुमि—केउ खोलेनि'।
बिछाना, बालिश, खाट,—केउ तोलेनि ॥
गंभीर निशाय उठि',
सेइ घरे जा'न छुटि,
उँकि मेरे' कि देखेन,—आमि कि जानि।
आमार त घूम नाइ,
सकलि' देखिते पाइ,
जननीर दशा देखि,—काँदे पराणि ॥
चरण धरिया मा'र,
बलि आमि बार बार,
"शोबार घरेते मागो ! जेयो ना तुमि।"
जे घरे शुइते तुमि,—केउ खोलेनि ॥

[१६]

जिस घरमें तुम सोते, उसे न खोला जाता।
बिस्तर, तकिया और खाट कोई न उठाता॥
घोर निशा में माता उठकर,
जाती हैं भागती उसी घर,
क्या देखतीं छिपी-सी, मेरी समझ न आता।
मेरी आँखोंमें नींद कहाँ,
देखा करती सब जहाँ-तहाँ,
माँकी दशा देख प्राणों को रोना आता॥
माँ के पद-पङ्कज पकड़ उभय,
मैं करती बारम्बार विनय,-
"शयन-कक्षकी ओर नहीं तुम जाना माता !"
जिस घरमें तुम सोते, उसे न खोला जाता॥

[२०]

भोरे उठे धेये जा'न गोयाला बाड़ी।
गोयालीके दिते चा'न पाटेर शाड़ी॥
"क्षीर, सर, ननी दिबे,
निमाइ आमार खाबे,"
बलिते बलिते बसे धरिया धारि।
गोयालिनी कँदे' मरे,
जननीके कोले ध'रे,
गृहेते लइया आसे नयने बारि॥
बुझिले न दुःख तुमि,
कि आर बलिब आमि,
सकलि' बुझिते पारे अबला नारी।
(मा) भोरे उठे धेये जा'न गोयाला बाड़ी॥

[२०]

प्रातः उठकर दौड़ी जातीं ग्वालेके घर।
चाह लिए, ग्वालिन को दूं साड़ी पाटंबर॥
"देना मक्खन, दूध, मलाई,
खायेगा मम लाल निमाई"
कहते-कहते जातीं बैठ दलान पकड़कर।
दे रही ग्वालिनी प्राण बिलख,
जननीको निज बाँहोंमें रख,
घर ले आती, आँखोंसे जल बहता झर-झर॥
तुमने दुःख नहीं समझा यह,
अधिक भला, क्या सकती मैं कह,
अबला नारी रहती सब कुछ समझ-समझकर।
प्रातः उठकर दौड़ी जातीं ग्वालेके घर॥

[२१]

कोथा ह'ते शाक तुलि' देन राँधिते।
बलेन "निमाइ मोर चेयेछे खेते" ॥
तुमि भालबास जाहा,
जेखाने देखेन ताहा,
यतने आनिया माता,—थोन घरेते।
तुमि जे गृहेते नाइ,
से ज्ञान ताँहार नाइ,
रन्धन करिते जा'न हरिष चिते ॥
सकलि बुझिते पारि,
देखे शुने केंदे मरि'
भूले जा'न मा आमार,—किसे कि दिते।
कोथा ह'ते शाक तुलि' देन राँधिते ॥

२१

तोड़ कहींसे शाक राँधने देतीं लाकर।
कहतीं—"रहा निमाई खानेकी इच्छा कर"॥
तुमको जो प्रिय लगती, भाती,
उसको देख जहाँ भी पातीं,
यत्नपूर्वक लाकर माता रखतीं, घरपर।
तुम चले गए घर छोड़ कहीं,
रहता उनको यह भान नहीं,
रंधन करने जातीं हर्ष हृदयमें भर-भर॥
सब कुछ मैं समझूँ मन-ही-मन,
देखूँ, सुनूँ, मरूँ कर क्रन्दन,
क्या डालें किसमें, माँकी जाती यह सुधि हर।
तोड़ कहींसे शाक राँधने देतीं लाकर॥

[२२]

राँधा बाड़ा पड़े थाके उनान-पाड़े।
तोमाय डाकिते जान गङ्गार घारे॥
घाटे घाटे छुटे जा'न,
कण्ठगत हय प्राण,
प्रखर रौद्रेर तापे पिपासा बाड़े।
घाटे वाटे पा'न जा'रे,
काँदिया सुधा'न तारे,
"कोथाय निमाइ मोर ? बले दे ओरे !"
सकले धरिया माय,
बाड़ी पाने निये जाय,
दूर ह'ते देखे मोर नयन झरे।
राँधा बाड़ा प'ड़े थाके उनान पाड़े॥

[२२]

राँधा भोजन चूल्हेके ही छोड़ सहारे।
तुम्हें बुलाने जाती हैं सुरसरी किनारे॥
भागी जातीं घाटोंपर सब,
लग जाता प्राणों को अब-तब,
बढ़ती भीषण प्यास प्रखर आतपके मारे।
जिसको पातीं घाट-बाटपर,
उससे ही पूछतीं बिलखकर,
"कहाँ निमाई मेरा ? मुझको दे बतला रे !"
जननी को वे सभी पकड़कर,
लिए हुए आते हैं घरपर,
देख दूर से अश्रु बहाते नयन हमारे।
राँधा भोजन चूल्हेके ही पड़ा सहारे॥

[२३]

गृहेते जखन माता आसेन फ़िरे ।
आधमरा देखि ताँरे,—माथार किरे ॥
कत लोक सङ्गे आसे,
ध'रे मा'के आसे पाशे,
बुक भासि सकलेर आँखिर नीरे ।
कि सुख नदीया-वासै,
देखे जाओ तुमि एसे,
देखाब' हृदयागुन हृदये 'चिरे' ॥
जे दुख हृदये धरि,
मुखे ता बलिते नारि,
बुक चिरे' देखाइब,—आसिले फिरे ।
एक बार एस फिरे,—माथार किरे ॥

[२३]

मैया हैं जिस समय लौटकर घरपर आती ।
सिरकी है सौगंध, अधमरी उनको पाती ॥
आते माँके संग बहुत जन,
अगल-बगलसे बन अवलंबन,
आँखोंके जलसे सबकी तर रहती छाती ।
क्या सुख नदियामें रहनेपर,
इसे देख जाओ तुम आकर,
चीर दिखाऊँ हृदय, लपट जो नित्य जलाती ॥
जो है दुःख हृदयमें छाया,
वह मुखसे जाता न बताया,
चीर दिखाऊँगी वापस आनेपर छाती ।
एक बार फिर आओ, सिरकी शपथ दिलाती ॥

[२४]

रोज आसे मार काछे मालिनी मासी।
विनाइये कहे तव गुणेर राशि॥
प्राणेर सखीरे देखि,
झरे मा'र दुटि आँखि,
दुहुँजने कत काँदे घरेते बसि'।
लुकाये आमाके घरे,
मनागुने दोहे झुरे,
सकलि' देखिते पाय तोमार दासी॥
घरेते रेखेछे तारे,
एइ सब देखिबारे,
केन वा दिले ना तार गलाय फाँसि।
रोज आसे मा'र काछे मालिनी मासी॥

[२४]

नित्य मालिनी मौसी मैयाके ढिग आतीं।
ब्योरेवार तुम्हारे गुणकी कथा सुनातीं॥
अपनी प्राण-सखीको पाके,
झरते दोनों लोचन माँके,
बैठीं घरमें उभय बिलखतीं अश्रु बहातीं।
कहीं छिपाकर मुझे भवनमें,
दोनों भुनतीं मनस्तपनमें,
दृक्-पथमें तव दासीके सब बातें आतीं॥
क्या गये उसे इसलिए त्याग,
देखे यह सब दिन-रात जाग,
क्यों दे गये न फाँसी उसको, वह सुख पातीं।
नित्य मालिनी मौसी मैयाके ढिग आतीं॥

[२५]

(मासी) त्यजिये संसार गृह रहे एखाने ।
कि भावे बुझान मा'के केह ना जाने ॥
दिन जाय, रात्रि आसे,
बसिया मांतार पाशे,
चुपि चुपि कत कथा बलेन काने ।
माता देन माथा नाड़ा,
जेन पागलिनी पारा,
मासिमा जड़ा'ये धरि' बाँचान प्राणे ॥
दुइ जने गला धरि,
भूमे जा'न गड़ागड़ि,
छूटे जाइ काछे आमि,—मन ना माने ।
संसार त्यजिये मासी रहे एखाने ॥

[२५]

अपने घरको छोड़ यहीं मौसी रह जातीं।
पता नहीं क्या कह-कह कर माँको समझातीं॥
दिन जाता, फिर रजनी आती,
माँके संग सब समय बितातीं,
चुप-चुप कानोंमें कितनी ही कथा सुनातीं।
माँ सिरसे झकझोरा भरतीं,
जैसे कोई पगली करती,
मौसी माँको पकड़-जकड़कर प्राण बचातीं॥
उभय परस्पर गले लिपट कर,
लोट तड़पती हैं पृथ्वी पर,
मन न मानता, मैं जाती ढिग कदम बढ़ातीं।
अपने घरको छोड़ यहीं मौसी रह जातीं॥

[२६]

पण्डित श्रीवास आसे राते खुँजिते।
चुपि चुपि ईशानेरे कहे डाकिते॥
ईशान दाँड़ाये द्वारे,
हातेते इशारा करे,
बुझिया मासिमा तबु नारे आसिते।
जननीके खाओयाइबे,
तबेते घरेते जाबे,
पण्डित रहेन वसि,—दूर पथेते॥
जा' किछु आहार दिये,
मासिमा शोयान गिये,
बिछानाय जननीके,—जे कोन मते।
पण्डित श्रीबास आसे राते खुँजिते॥

[२६]

निशा समय पण्डित श्रीवास खोजते आते।
'चुपके लो ईशान ! बुला'—यह बात सिखाते॥
खड़ा द्वार ईशान बिचारा,
हाथोंसे ही करे इशारा,
मौसी लेतीं समझ, न फिर भी बनता आते।
जननीको भोजन करवाकर,
तभी जायँगे वे अपने घर,
पथमें हटकर दूर बैठ पण्डित हैं जाते॥
ज्यों-त्यों कुछ भी खिला-पिलाकर,
मौसी ले जातीं शय्यापर,
शयन कराने किसी भाँति माँको समझाते।
निशा समय पण्डित श्रीवास खोजते आते॥

[२७]

पण्डित श्रीवास आर कहे ना कथा।
(ताँर) वदने प्रकाश पाय मनेर व्यथा॥
ए वृद्ध वयसे ताँर,
भेंगेछे बुकेर हाड़,
(तिनि) तोमार कारणे दुःख पान अयथा।
छिले तुमि प्राण जाँर,
दिये ताँके दुखभार,
कि सुख पाइले तुमि,—आमार माथा॥
बुड़ा बुड़ी दोंहे मरे,
तोमार विरह-ज्वरे,
शुकाइले देहतरु,—रहे कि लता?
पण्डित श्रीवास आर कहे ना कथा॥

[२७]

करते कोई बात न अब श्रीवास विप्रवर।
मनकी व्यथा लिखी रहती है उनके मुखपर॥
उनकी वृद्धावस्थामें इस,
गया अस्थि-पञ्जर उरका पिस,
व्यर्थ दुःख वे पाते हैं तुमको ही लेकर।
तुम थे प्राण और जो काया,
दुःख उन्हींपर अमित ढहाया,
पाया तुमने कौन भला सुख, क्या मेरा सर?
बूढ़ा-बूढ़ीको यमके घर,
लिए ज़ा रहा तव वियोग-ज्वर,
ठहरेगी क्या लता, सूख तरुके जानेपर?
करते कोई बात न अब श्रीवास विप्रवर॥

[२८]

ना करेन देखा तिनि जननी साथे।
दुःखे पाछे माता, नोड़ा मारेन माथे॥
उथलिया दुःख उठे,
पराणे आगुन छुटे,
श्रीवास-अङ्गन-कथा आसे मनेते।
जेखाने नाचिते तुमि,
एबे ताहा मरुभूमि,
सेखानेते आर केह पारे ना जेते॥
नाम ना करिते पारे,
फिरे चेये केंदे मरे,
हयेछे विषम दाय,—घाटेते जेते।
ना करेन देखा तिनि जननी साथे॥

[२८]

नहीं कभी वे मिलते हैं मैयासे आकर।
कहीं दुःखमें फोड़ नहीं लें लोढ़ेसे सर॥
दुःख रहा उठ उफन-उफनकर,
रहा हुताशन प्राणोंमें भर,
श्रीवासाङ्गणकी बातें आतीं स्मृति-पटपर।
जिस थलपर करते थे नर्तन,
वह अब रहा मरुस्थल है बन,
अब कोई उस ओर नहीं जा पाता, उस घर॥
कर पाते न नाम-संकीर्तन,
फिर-फिर देख मरें कर क्रन्दन,
आती विषम विपत्ति घाटपर भी जानेपर।
नहीं कभी वे मिलते हैं मैयासे आकर॥

[२६]

पण्डितेर दुइ भाइ श्रीपति निधि।
बहिछेन शिरोपरे दुख-वारिधि॥
तेयागिये गृहवास,
विदेशेते बारमास,
नारी पुत्र प्राणे मरे,—ए कोन विधि!
तोमार बिहने ताँरा
उनुमत दिशेहारा,
तोमार गुणेर ओगो नाहि अवधि॥
घर बोला जत छिल,
सबाइ विरागी ह'ल,
कँदे मरे कुलनारी,—हायरे विधि।
पण्डितेर दुइ भाइ श्रीपति निधि॥

[२६]

श्रीपति, निधि—ये पण्डितके दो भाई होते।
दोनों ही हैं दु:ख-वारिनिधि सिरपर ढोते॥
अपने घरपर रहना तजकर,
मास बारहों रहते बाहर,
कैसी विधि यह?—नारी-पुत्र प्राण हैं खोते।
तव वियोग, यह उनका खाका,—
पागल, भ्रमित, न ज्ञान दिशा का,
अवधि न, आसी तव गुण-गणकी माला पोते॥
गृहस्थाश्रमी थे जितने जन,
वे सब बैठे बैरागी बन,
हाय विधे! कुल ललना मरती रोते-रोते।
श्रीपति, निधि—ये पण्डितके दो भाई होते॥

[३०]

तोमार जे मेसो ह'न चन्द्र ठाकुर ।
एकेबारे उनुमत फेलिये कापुड़ ॥
सङ्गे ताँरे निये गेले,
कि जानि कि देखाइले,
वृद्ध ब्राह्मण ह'ल, एकि शोकातुर ।
दूरे गेछे स्नानाहार,
पागलेर व्यवहार,
भेवे भेवे मासीमार निद्रा ह'ल दूर ॥
मेसोके पागल क'रे,
नारी बुके छुरि मेरे,
नदीयार चाँद ! तुमि ह'ले बाहादुर ।
तोमार जे मेसो हन चन्द्र ठाकुर ॥

[३०]

नाम चन्द्र ठाकुर जिनका, मौसिया तुम्हारे।
फेंक दिये पूरे पागल हो कपड़े सारे॥
उन्हें ले जाकर अपने सङ्ग,
न जाने कौन दिखाया रङ्ग,
शोकाकुल हो गये वृद्ध ब्राह्मण बेचारे।
छूटा खाना और नहाना,
हुआ पागलोंका-सा बाना,
नींद गयी मौसीजीकी चिंताके मारे॥
मौसाको उन्मत्त बनाके,
अबलाके उर सेल धँसाके,
तुम नदियाके चाँद, बने हो वीर-जुझारे।
नाम चन्द्र ठाकुर जिनका, मौसिया तुम्हारे॥

[३१]

शुनेछि सकल कथा मातार मुखे।
बलितेछि एके एके बड़इ दुःखे ॥
पितार अवर्त्तमाने,
तोमारे जे पुत्रज्ञाने,
पालिलेन स्नेहभरे करिया बुके।
ताँर प्रति एत दया!
बलिहारि तव माया!
ताँर तुलनाय आमि,—आछि त सुखे ॥
बलिबार नय कथा,
प्राणे जे दियेछ व्यथा,
जावेना—जाबार नय,—युगे वा युगे।
शुनेछि ए सब कथा मातार मुखे ॥

[३१]

सुनी कथा है मैंने माँके मुखसे सारी।
बड़े दु:खसे उन्हें कह रही बारी-बारी॥
पितृ-चरणके उठ जानेपर,
पुत्ररूपमें तुमको पाकर,
पाला-पोसा लेकर स्नेह हृदयमें भारी।
ऐसी अनुकंपा उनके प्रति,
तव मायाकी बलिहारी अति,
उनकी तुलनामें तो मैं हूँ सुखिया नारी॥
कहनेकी यह बात न कोई,
प्राणोंमें वह पीड़ा बोई,
युग-युग तक जिसकी न सूखनेवाली क्यारी।
सुनी कथा है मैंने माँके मुखसे सारी॥

[३२]

निज जने एत दुःख जे दिते पारे।
(से) अनायासे परजने पराणे मारे ॥
आमि तव परजन,
तुमि मर्म प्राणधन,
ताइ बेंधे रेखे गेले,—ए कारागारे।
हात पा बेंधेछ तुमि,
उठिते ना पारि आमि,
जननीर सेवा भार दियेछ मोरे ॥
निज जने दिये ज्वाला,
कि ह'बे तोमार भाला,
कि धरम कर तुमि,—पूछि वा का'रे ?
निज जने एत दुःख,—के दिते पारे ?

[३२]

दुख दे सकते हैं निज जनको जो इस प्रकार।
वे अनायास लेंगे परजनका सिर उतार॥
मते तुम्हारे मैं हूँ परजन,
मेरे तो तुम किंतु प्राणधन,
यह तभी सबंधन कारा दी बनु कर उदार।
हाथ-पैरको बाँध दिया है,
उठना मेरा कठिन किया है,
जननी-सेवाका ऊपरसे सिर दिया भार॥
निज जनको देकर यह ज्वाला,
कौन पियोगे मंगल-प्याला,
तुम कौन धर्म कर रहे, किसे पूछूं पुकार?
दुख दे सकता है कौन स्वजनको इस प्रकार?

[३३]

ईशानेर दशा देखि' पराणे मरि।
कोन मते आछे से जे पराण धरि'॥
जलबिन्दु नाहि खाय,
कोथाओ नाहिक जाय,
पाछु पाछु 'फिरे मा'र देह आगोरि।
आमि यदि एका थाकि,
पुरनारि देय डाकि,
कि काज दियेछ तारे,—कि दया मरि!!
माता किछु खेले परे,
तबे से आहार करे,
राते शुये डाके सदा,—"हे गौरहरि!"
ईशानेर दशा देखि' पराणे मरि॥

[३३]

देख दशा ईशान प्राण जानेको तत्पर।
किसी तरह वह रहा स्व-जीवनको धारण कर ॥
लेता जल भी कण-मात्र नहीं,
है जाता इधर न उधर कहीं,
पीछे-पीछे रहता दृष्टि दिए, माँ-तनपर।
मैं यदि हुई अकेले घरपर,
ले आता पुर-नारि बुलाकर,
सौंपा कैसा काम देव ! बलि गई दयापर ॥
खा लेती हैं जब कुछ माता,
तभी अन्न उसके मुख जाता,
निशिमें सोते समय 'गौर हरि' की धुन मुखपर।
देख दशा ईशान प्राण जानेको तत्पर ॥

[३४]

(से जे) मानुष करे’छे तोमा,—कोले करिया।
ना हेरे नदीयाचाँदे’—मरे काँदिया॥
ना देखाय आँखिबारि,
ना जाय काहारओ बाड़ी,
काहाके बले ना दुख,—रहे सहिया।
मुख तुले’ नाहि चाय,
करे ना से ‘हाय हाय’,
मायेर चरण पाने रहे चाहिया॥
कथा क’ले मुख तुले’,
बुक भासे आँखि-जले,
अवनत मुखे जाय,—काज करिया।
(से जे) मानुष करेछे तोमा;—कोले करिया॥

[३४]

तुम्हें पालकर बड़ा किया गोदीमें रखकर।
न लख तुम्हें वह मरता नदिया-चाँद! विलखकर॥
आँसू तक अपना न दिखाता,
नहीं किसीके भी घर जाता,
दुख न किसीसे कहता सहता भीतर भीतर।
वदन, उठाकर नहीं, निहारे,
हाय-हाय वह नहीं पुकारे,
दृष्टि दिए रहता माताके ही चरणोंपर॥
बात कहो, तब वदन उठाता,
वक्ष अश्रुसे तर हो जाता,
काम सभी करता रहता, आनन अवनत पर।
तुम्हें पालकर बड़ा किया गोदीमें रखकर॥

[३५]

अवधूत नित्यानन्द,—पागल केंदे ।
ना देखे मायेर मुख,—तोमार खेदे ॥
सारा नदीयाय शुनि,
ताँहार शोकेर ध्वनि,
दुखेर काहिनी-भरा,—सोनार नदे' ।
सदानन्द नित्यानन्द,
तव शोके निरानन्द,
किवा दोष करिलेन तोमार पदे ॥
मोरा शत अपराधी,
नित्यानन्दे ए कि विधि,
अक्रोध परमानन्दे मारिले बेंधे' ।
अवधूत नित्यानन्द,—पागल केंदे ॥

[३५]

नित्यानन्द विरागी होते रोकर पागल।
नहीं देखते तव दुखसे माँका मुख-मण्डल॥
पड़ रही सुनाई नदिया भर,
ध्वनि उनकी शोक भरी कातर,
रही स्वर्ण-नवद्वीप भूमिमें दुःख-कथा चल।
सदा आनन्दी नित्यानन्द,
हुए तव शोक विगत-आनन्द,
किया तुम्हारे पद-कमलोंके प्रति क्या अनभल ?
मैं शत अपराधोंकी निधान,
पर उनके प्रति यह क्या विधान,
अक्रोधी परमानन्दीका मर्म दिया दल।
नित्यानन्द विरागी होते रोकर पागल॥

[३६]

मायेर खबर ल'न,—लोकेर मुखे।
बनवासी हयेछेन,—मनेर दुखे ॥
दुटी प्राण एक छिले,
से कथा सबाइ बोले,
कि करि' मारिले शेल ताँहार बुके ?
तुमि ताँर छिले प्राण,
दिले भाल प्रतिदान,
बादी ह'ले पागलेर मनेर सुखे ॥
छिलेन प्राणेर भाइ,
मुखे ताँर हासि नाइ,
शतधारा बहितेछे सदाइ आँखे।
(तिनि) वनवासी ह'येछेन,—मनेर दुखे ॥

[३६]

माँका लेते हाल जान लोगोंसे सुनकर।
मनोवेदनाको लेकर हो गये विपिनचर॥
प्राण एक ही था, थे दो तन,
बात यही कहते हैं सब जन,
फिर क्यों भोंक दिया उनके उरमें त्रिशूल खर ?
तुम जिनके जीवन-प्रान रहे,
दे भला उन्हें प्रतिदान रहे,
पागलका अन्त-सुख-घट रख दिया उलट कर॥
थी जहाँ प्राण-बंधुता जुड़ी,
अब वहाँ अधरसे हँसी उड़ी,
सदा नयनसे धारा बहती शतधा झर-झर।
मनोवेदनाको लेकर हो गये विपिनचर॥

[३७]

दामोदर गदाधर आकुल शोके।
दुखेर सागरे भासे नदे'र लोके॥
मुरारिर हाहाकारे,
पशुपाखी कँदे मरे,
शोकेते विह्वल सबे,—के कारे देखे।
पुत्र कन्या काछे गेले,
अमनि उठेन ज्वले,
काण्डाकाण्ड नाइ ज्ञान,—कुकथा मुखे॥
छेड़े गिया नदे' भुमि,
कि काज करिले तुमि,
बुझिले ना तुमि ताहा,—मरि जे दुखे।
दुखेर सागरे भासे नदे'र लोके॥

[३७]

शोकाकुल अतिशय दामोदर और गदाधर।
नदिया के जन डूब रहे दुःखोदधि भीतर॥
हाहाकार मुरारी करते,
रो-रोकर पशु-पक्षी मरते,
शोकाकुल सब लोग, कौन दृग डाले किसपर ?
निकट सुता-सुत जो आते चल,
सभी लोग मानों उठते जल,
कह देते अपशब्द उचित-अनुचित न सोचकर॥
जो गये छोड़ करके नदिया,
यह कैसा तुमने काम किया,
समझे दुःख नहीं, वह जिससे रही आज मर।
नदियाके जन डूब रहे दुःखोदधि भीतर॥

[३८]

श्रीधरेर दशा देखे,—जाइ जे मरे'।
कि काज ए छार मोर जीवन ध'रे ?
हाथे लाठि गुड़ि गुड़ि,
तोमार दुयार धरि,
"पण्डित निमाइ" बलि',—कत फुकारे।
मने नाहि देन ठाँइ,
तुमि जे बाड़ीते नाइ,
चीत्कार करिया डाके पथेर धारे॥
उथले मायेर शोक,
देखे काँदे शत लोक,
आछाड़ि' आछाड़ि' माता—भूमेते पड़े।
(ओगो) कि काजए छार मोर जीवन ध'रे ?

[३८]

देख दशा श्रीधरकी आती बन प्राणों पर।
राख हुए मम जीवनको क्या होगा रखकर ?
लाठी-हुक्का लिए हुए कर,
खड़े तुम्हारे दर्वाजे पर,
बोल 'निमाई पण्डित' रोते फफक-फफककर।
बात नहीं यह धँसती मनमें,
अब न तुम्हारा बास भवनमें,
रो-रो देते हूँक किनारे खड़े सड़क पर।
माँका विपुल शोक-उद्वेलन,
देख लोग शत करते क्रन्दन,
गिर-गिर पड़तीं मैया भूमि पछाड़ें खाकर।
राख हुए मम जीवनको क्या होगा रखकर ?

[३६]

तोमार शोकेते पेये हृदये व्यथा।
आमार सखीरा दुखे कहे ना कथा॥
कारो मुखे नाइ हासि,
आमि [illegible] सरबनाशी,
आमारि', तरेते तुमि,—गेले गो कोथा?
काञ्चना केवल आसे,
तोमार ए पोड़ा बासे,
ता'र मुखे शुनि तव गुणेर कथा॥
हासि नाइ ता'र मुखे,
मरे से आमार दुखे,
कि फल राखिया मोर जीवन वृथा?
आमार सखीरा दुखे कहे ना कथा॥

[३६]

लिए हृदयमें भार व्यथाका शोक तुम्हारे।
मेरी सखियाँ बात न करतीं दुखके मारे॥
मुख न किसीके गयी हँसी रह,
मेरे कारण सर्वनाश यह,
बस निमित्त मेरे ही प्रिय! तुम कहाँ सिधारे?
एक काञ्चना है आती बस,
तव गृह, जिसे चुकी ज्वाला ग्रस,
उसके मुखसे सुनूँ गुणोंकी कथा तुम्हारे॥
आती हँसी न उसके मुखपर,
रही दुःखसे वह मेरे मर,
चेरी यह किस लिए वृथा निज जीवन धारे?
मेरी सखियाँ बात न करतीं दुखके मारे॥

[४०]

तोमार भकत आछे,—जीयन्ते मरे'।
ए केमन भालबासा,—पागल क'रे॥
केह वा पथेते छोटे,
केह घरे 'माथा कोटे,
केह काँदे- दिवानिशि,—वेदना भरे।
के का'रे सान्त्वना करे,
के जाय काहार घरे,
के देखे काहारे ओ गो,—के का'रे धरे ?
सबाइ पागल-पारा,
दुखेते आपनहारा,
के का'र खबर राखे,—आछे जे म'रे।
ए केमन भालबासा,—पागल क'रे॥

[४०]

भक्त तुम्हारे जीवित ही हैं यथा गये मर।
कैसा प्रेम भला, देना सबको पागल कर॥
कोई दौड़ रहा है पथपर,
कोई घरमें फोड़ रहा सर,
कोई रोता भरा वेदनासे निशि-वासर।
अहो कौन किसको समझाये,
और कौन किसके घर जाये,
किसको पकड़े कौन, कौन रक्खे हक् किसपर ?
पागलपनकी सीमा पकड़े,
सभी दुःखमें अपने जकड़े,
किसकी रक्खे कौन खबर जब स्वयं चुका मर।
कैसा प्रेम भला, देना सबको पागल कर॥

[४१]

आमि त आछि गो भाल ता'देर चेये ।
मा'र काछे घरे आछि,—घरेर मेये ॥
कुलेर बधू जे ता'रा,
हइये पागल पारा,
घरबाड़ी छेड़' पथे जेतेछे धेये ।
कुलेर बधूर नाइ,
सरमेर लेश छाइ,
तोमार आसार आशे रयेछे चेये ॥
तोमार गुणेर कथा,
बले ता'रा जथा तथा,
कुलनारी-अलङ्कार, —सरम खेये ।
आमि त आछि गो भाल ता'देर चेये ॥

[४१]

पाती हूँ निज दशा भली उनसे तुलना कर।
गृहिणी हूँ, रहती माँके ढिग गृहके भीतर॥
कुल वधुएँ सारीकी सारी,
हुईं परम पागल बेचारी,
छोड़-छोड़ घर-बार दौड़ती फिरतीं पथपर।
यद्यपि सभी कुलीन वधूटी,
किन्तु लाज-छाया भी छूटी,
देख रहीं पथ तवागमनकी आशा लेकर॥
विपुल तुम्हारा गुण-गण-संग्रह,
जहाँ तहाँ जातीं लगने कह,
कुल-नारी-आभूषण—लज्जाको दफनाकर।
पाती हूँ निज दशा भली उनसे तुलना कर॥

[४२]

मा तोमार माथा कोटे से सब देखे'।
आमार कपाल भाल,—देखि ना चोखे ॥
काने शुने' मरि आमि,
से सब दुखेर वाणी,
देखिले गो मरिताम,—मनेर दुखे !
तोमार विरह-ज्वाला,
सबे करे झालापाला,
कि आगुन ज्वालिले हे,—ता'देर बुके ?
पुड़ाइये नदे' भूमि,
कि सुख पाइले तुमि,
धरम कि ह'त ना गो,—नदे'य थेके' ?
मा तोमार माथा कोटे से सब देखे' ॥

[४२]

वे सब बातें देख फोड़तीं तव जननी सर।
मेरा भाग्य भला न दृष्टि जा पाती उनपर।।
सुन भसने लगती प्राण-तरी,
उन सबकी वाणी दुःख भरी,
देख अगर लेती जाती मनके दुखसे मर।
तव वियोग पावकमें दारुन,
सब कराहते, सभी रहे भुन,
उनके उरमें कैसी दी प्रज्वलित आग कर?
नवद्वीप-क्षेत्र इस भाँति जला,
सुख मिला कौनसा तुम्हें भला,
नहीं धर्म पालन होता क्या नदिया रह कर?
वे सब बातें देख फोड़तीं तव जननी सर।।

[४३]

आमार दुखेर कथा,—भुलेछि आमि ।
तुमि त सुखेते आछ,—पराण-स्वामी ?
नदीयावासीर दुख,
भरा प्राण भरा बुक,
देखिले ना, बुझिले ना,—केन कि जानि ।
तुमि बड़ दयामय,
सकले केन कय,
सर्व्वजीवे सम दया,—कि करे मानि ?
नदे' वासी जीव नय,
इहा कि सम्भव हय,
प्रकाश करिये वल तोमार वाणी ।
आमार दुखेर कथा, —भुलेछि आमि ॥

[४३]

अब स्व-दुःखकी बात नहीं आती स्मृति-पटपर।
तुम तो हो सुख सहित न हे मेरे प्राणेश्वर ?
नदियावासी जनका दुखड़ा,
उनके उर प्राणोंमें उमड़ा,
पता न क्यों समझे न उसे, दृग पड़े न उसपर।
हो परम दयाके तुम निधान,
सब करते क्यों ऐसा बखान,
दया समान सभी जीवोंपर मानूँ क्योंकर ?
नदिया वासी जीव नहीं हैं,
यह भी संभव बात कहीं है,
तुम्हीं प्रकाशित करो तथ्य निज मुखसे कह कर।
अब स्व-दुःखकी बात नहीं आती स्मृति-पटपर ॥

[४४]

नदीयार पशु पाखी नीरवे काँदे !
नदीयावासीरे तुमि,—फेलेछ फाँदे ॥
नाहि से गङ्गार शोभा,
मुनिजन - मन - लोभा
गाहे ना विहगकुल मधुर नादे ।
बहे न तरङ्गकुल,
लोक सब शोकाकुल,
विनाइया काँदे घाटे त्रिविध छाँदे ॥
आमि जे तोमार दासी,
पोड़ामुखी सर्वनाशी,
आमारि तरेते तुमि,—छाड़िले नदे' ।
नदीयार पशु पाखी नीरवे काँदे ॥

[४४]

नदियाके पशु-पक्षी करते नीरव क्रन्दन।
फंसा गये फंदेमें तुम नदियावासी-जन॥
रह न गयी गङ्गाकी छवि वह,
मुनि-जन-मन जिसमें जाता वह,
नहीं मधुर स्वरसे विहंगकुल करता गायन।
बहती न तरंगें मचल-मचल,
सब लोग हो रहे शोक-विकल,
घाट-घाटपर रोते कर-कर बहु विधि वर्णन॥
मैं ही वह किंकरी तुम्हारी,
दग्धमुखी सर्वस्व-कुठारी,
छोड़ दिया नदिया तुमने मेरे ही कारन।
नदियाके पशु-पक्षी करते नीरव क्रन्दन॥

[४५]

ए सब देखिया आमि मनेते भावि।
तोमार उपरे मोर किसेर दावि?
तुमि हे जगतनाथ,
सकलि तोमार हात,
अधिकार आछे तव,—दिवि ओ भुवि।
सुख दुख इच्छा तव,
लीलास्थल एइ भव,
जगतेर जीव तव,—खेलार छवि॥
जीवेरे नाचाओ तुमि,
अबला नारी जे आमि,
ना बुझे तोमार मर्म्म,—देव ओ देवी।
तोमार उपरे मोर किसेर दावि?

[४५]

हूँ विचारती मन में मैं यह सब कुछ लखकर।
क्या दावा है नाथ ! भला, अब मेरा तुमपर ?
तुम हो स्वामी जगके सारे,
करतलगत सर्वस्व तुम्हारे,
है छाया अधिकार तुम्हारा नभपर, भूपर।
सुख-दुख दोनों ही इच्छा तव,
लीला-क्षेत्र तुम्हारा यह भव,
जग-जीवोंको बना खिलौना रहे खेल कर॥
सृष्टि नचाते हो तुम सारी,
मैं तो केवल अबला नारी,
नहीं जानते मर्म तुम्हारा सुर-नारी-नर।
क्या दावा है नाथ ! भला, अब मेरा तुमपर ?

[४६]

दिये सुख पुनः तुमि,—लइले काड़ि ।
मनेते रहिला मोर,—ए दुख भारि ॥
यदि ना करिते दया,
ह'त ना ए मोह माया,
दासी बले, नियेछिले करुणा करि' ।
एत कथा ताइ बलि,
माया घोरे भूलि भूलि',
अपराध लइओ ना,—आमि जे नारी ॥
दासीपद दियेछिले,
तुमिइ ता' केड़े निले,
जाहा कर ताइ भाल,—बुझिते पारि ।
दिये सुख पुनः तुमि,—लइले काड़ि ॥

[४६]

छीन लिया सुखको फिर तुमने पहले देकर।
यही एक गुरु-दुःख रह गया मनके भीतर ॥
यदि न दयाका खुलता सोता,
इतना माया-मोह न होता,
दासी कह जो अपनाया था करुणासे भर।
इतनी बात इसीसें कहती,
मायाके प्रवाहमें बहती,
मैं नारी, करना विचार मत अपराधोंपर ॥
था दासी-पद जो मुझे दिया,
तुमने ही उसको छीन लिया,
समझ रही हूँ जो—तुम करो, वही मङ्गल-बर।
छीन लिया सुखको फिर तुमने पहले देकर ॥

[४७]

आपन दुखेर आर,—क’ब न कथा।
मनेर माझारे तुमि,—पा’बे गो व्यथा॥
मरि यदि भाल तबु,
बलिब ना तोमा’ कभु,
हृदि-वेदनार भार,—काँदिया वृथा।
कि ह’बे आमार सुखे,
मने तव दिये दुख,
जानिना आमि जे नाथ,—कुटिल प्रथा॥
जानि सुधु दासी आमि,
तुमि जे प्राणेर स्वामि,
तोमार पराणे दिब,—केमने व्यथा?
(आमि) आपन दुखेर आर,—क’ब ना कथा॥

[४७]

अब नहीं कहूँगी अपने दुखकी कभी कथा ।
चर्चासे उसकी मनमें होगी तुम्हें व्यथा ।।
होगा भला, अगर जाऊँ मर,
नहीं कहूँगी तुम्हें कभी पर,
निज-हृदय-वेदना-भार,—विलखना हुआ वृथा ।
भला, कौन लूंगी मैं सुख पा,
दुखसे हृदय तुम्हारा तड़पा,
मैं नहीं जानती प्राणेश्वर ! यह कुटिल प्रथा ।।
मैं दासी बस, इतना मालुम,
तथा प्राणपति हो मेरे तुम,
तब प्राणों को दूंगी में कैसे भला, व्यथा ?
अब नहीं कहूँगी अपने दुखकी कभी कथा ।।

[४८]

चरण धरिया करि,—एइ मिनति।
कि क'रे भजिब तोमा,—देखाओ रीति॥
लये'छ कठोर व्रत,
पाइतेछ क्लेश कत,
आमि त घरेते आछि,—सुखेते अति।
सब कथा मने ह'ले,
हृदये आगुन ज्वले,
कि क'रे भजन करि,—दाओ सुमति॥
सेवा-विधि बले' दिये,
सुशीतल कर हिये,
आमि गो घरेते आछि,—तुमि जे यति।
चरण धरिया करि,—एइ मिनति॥

[४८]

पकड़ तुम्हारे चरण-कमल विनती करती यह ।
किस प्रकारसे भजूँ तुम्हें, दो मुझे रीति कह ।।
अपनाया तुमने व्रत कठोर,
पाते कितनी यातना घोर,
मैं तो घरमें अतिशय सुखके साथ रही रह ।
जब सब बातें मनमें आतीं,
दहक हृदयमें ज्वाला जाती,
किस प्रकारसे भजन करूँ, दो मुझे सुमति वह ।।
सेवा का विधान समझाकर,
हृदय बीच दो शीतलता भर,
तुम धारण यति-वेश किये, मैं रही भवन रह ।
पकड़ तुम्हारे चरण-कमल विनती करती यह ।।

[४६]

किसेर संसार मोर,—तोमारे छाड़ि' ?
केन तुमि छेड़े' गेले,—ए घर-बाड़ी ?
कि करे' बुझाइ मन,
ताइ भावि अनुखन,
तोमार मायेर सेवा,—कि करे' करि ?
जे ज्वाला दियेछ तुमि,
कि आर बलिब आमि,
काँदि आर मुछि मोर—नयनवारि ॥
तुमि ह'ले देशान्तरी,
आमि जे पराणे मरि,
का'र काछे बलि दुख,—आमि जे नारी ?
किसेर संसार मोर,—तोमारे छाड़ि ?

[४६]

क्या मेरा लौकिक प्रपञ्च अब बिना तुम्हारे ?
तजकर यह घर-बार भला किसलिए सिधारे ?
मनको समझाऊँ किस प्रकार,
बस, यही एक प्रतिपल विचार,
किस विधि सेवा-कर्म करूँ तव माँ के सारे ?
तुमने है जो आग लगाई,
जाती वह मुझसे न बताई,
अश्रु बहाना और पोंछना काम हमारे ।।
तुमने तो प्रवास अपनाया,
मेरे प्राणोंपर बन आया,
किसके आगे कहूँ दुःख अबला-तन धारे ?
क्या मेरा लौकिक प्रपञ्च अब बिना तुम्हारे ?

[५०]

मनेर खेदेते आमि,—कत जे बलि।
अरण्ये रोदन मोर,—काल जे कलि॥
कलि अवतार बले,
तोमार भकत-दले,
तराइले जीव तुमि,—चरणे दलि'।
काँदाइये. निज जन,
शिखा'ले हे कि साधन,
जननी फेलिया कोथा गेले हे छलि?
मारिये शिरेते बाज,
साधिले आपन काज,
(आर) कि आछे तोमार मने;—बल गो खुलि'।
मनेर खेदेते आमि,—कत जे बलि॥

[५०]

में कहती बात अनेक खेदसे मन जो विह्वल।
सब अरण्य-रोदन मेरा, छाया कलियुग खल॥
तुम्हीं हो कलियुगमें अवतार,
तुम्हारे कहते भक्त पुकार,
तारा तुमने जीवोंको कलिको पदसे दल।
रुला-रुलाकर स्वीय भक्तगण,
करते किस साधनका शिक्षण,
छोड़ अनाथा जननीको हे! कहाँ दिये चल?
भले वज्र उनके सिर मारा,
अपना तो पर काज सँवारा,
मनमें जो हो और कहो खोले अन्तस्तल।
मैं कहती बात अनेक खेदसे मन जो विह्वल॥

[५१]

काँदिले काटिले तुमि,—देखा दिबे ना।
जानि आमि,—तबु मोर,—मन बुझे ना॥
पाषाणे बेंधेछि बुक,
ना देखा' कालामुख,
गृहे वसि' तव नाम—करि साधना।
कठोर भजन रीति,
शिखाओ यतने अति
ए दासीर प्रति नाथ ! करि करुणा॥
तोमार चरण-मधु,
आमार साधन शुधु,
पिब आर पियाइब,—भकत जना'।
काँदिले काटिले तुमि,—देखा दिबे ना॥

[५१]

नहीं मिलेगा रोने-धोनेसे तव दर्शन।
इसे समझती, नहीं मानता फिर भी मम मन ।।
बाँध लिया छातीपर पत्थर,
मुख न दिखाऊँगी तिमिराकर,
घरमें रहकर करूँ नामका तव मैं साधन।
दुष्कर कठिन भजनकी पद्धति,
मुझे सिखादो यत्न सहित अति,
कर करुणा इस दासीके ऊपर जीवन-धन !!
पावन मधु तव मञ्जु चरनका,
एक लक्ष्य मेरे साधनका,
पीऊँ तथा पिलाऊँगी भक्तोंको भर मन।
नहीं मिलेगा रोने-धोनेसे तव दर्शन।।

[५२]

अनुरागी ह'ये यदि डाकिते पारि।
आसिते हइवे नाथ,—देखिते नारी॥
लइते पारि गो यदि,
तव नाम निरवधि,
ए विपद् जा'वे मोर,—विपद्-हारि!
कर नाथ! शक्ति दान,
जाक् मोर अभिमान,
जनम दुखिनी आमि—दासी तोमारि॥
अभिमाने हृदि-भरा,
कि साध्य भजन करा,
दूर कर अभिमान,—दरपहारि!
अनुरागी ह'ये जा'ते डाकिते पारि॥

[५२]

सकूँ बुला अनुरागमयी सचमुच यदि बनकर।
मुझे देखने आना ही होगा प्राणेश्वर !!
अगर नचा पाऊँ रसनापर,
नाम तुम्हारा नित्य-निरंतर,
निश्चय लय होगी विपत्ति यह हे विपत्ति-हर !
हे नाथ ! शक्तिका दान करो,
मेरा सारा अभिमान हरो,
जन्म-दुःखिनी दासी हूँ मैं तव सेवा-पर ॥
अभिमान हृदयमें भरा गहन,
वश नहीं बने भजनोपासन,
दूर करो अभिमान सभी हे दर्प-दलनकर !
सकूँ बुला अनुरागमयी सचमुच फिर बनकर ॥

[५३]

थाकिले कि अनुराग,—तुमि गो जे'ते।
अनुरागी ह'ले—तुमि दरश' दिते॥
नाहि गाढ़ अनुराग,
ए मोर दगध भाग,
ताइ तुमि चले' गेले विषाद चिते।
नाइ प्रीति भालबासा,
कि क'रे चरण आशा—
करि आमि दयामय,—तोमारे फें'ते॥
शिखाओ करुणा क'रे,
काँदिते चरण ध'रे,
लइते तोमार नाम,—खे'ते ओ शु'ते।
थाकिले से अनुराग,—तुमि कि जे'ते॥

[५३]

होता यदि अनुराग, न जाते तुम जीवन-धन !
होती मैं अनुरागमयी तुम देते दर्शन ॥
जो मुझमें अनुराग न गाढ़ा
भाग्य इसीसे मेरा डाढ़ा,
इसीलिए तो चले गये तुम हो विषण्ण-मन ।
नहीं प्रीति-पूरित अन्तस्तल,
कैसे आशा करूँ चरण-तल
पानेकी मैं भला, तुम्हारे देव ! दयाघन !!
मुझे सिखाओ करुणा कर यह—
क्रन्दन करना चरणोंको गह,
लेना नाम तुम्हारा सोते, करते भोजन ।
होता यदि अनुराग न जाते तुम जीवन-धन !!

[५४]

आर न बलिब किछु,—आमि जे दासी ।
पराण भरिया तोमा,—भाल न बासि ॥
मनदुखे चले' गेले,
दासीरे चरणे ठेले',
ताइ काँदि निरजने दिवस निशि ।
जननी दुखेते भासे,
आमारि' कपाल दोषे,
आमि काल शत्रु ताँर,—सरबनाशी ॥
तुमि त सकलि जा'न,
दया करि लह प्राण,
तोमार विरह-ज्वाला,—ए दुख नाशि ।
आर ना बलिब किछु,—आमि जे दासी ॥

[५४]

नहीं कहूँगी बात और मैं अधम किंकरी।
भरी न छलछल तव पद-रतिसे प्राण-गागरी ॥
चले गये मनमें दुख पाकर,
दासी को पदसे ठुकराकर,
विजन तभी तो जाती रोते दिन-विभावरी।
मग्न हो रही दुखमें जननी,
मेरे ही दुर्दिनकी करनी,
रिपु काल-रूप मैं उनकी सर्व-विनाश-करी ॥
तुमसे तो कुछ भी नहीं छिपा,
ले लो प्राणोंको, करो कृपा,
तव वियोग-ज्वाला-नाशक बस, यही निर्झरी।
नहीं कहूँगी बात और मैं अधम किंकरी ॥

[५५]

शेष कथा बले' दिये,—नीरवे र'ब ।
तव कथा भिन्न आन,—कथा ना क'ब ॥
तव नाम करि' सार,
वहिब ए देह-भार,
तोमार घरेते बसि',—महिमा गा'ब ।
तोमार मायेर सेवा,
पूजा मोर देवी देवा,
तोमार चरणधूलि,—खूटिया खा'ब ॥
जत दिन र'बे देह,
देखिते ना पा'बे केह,
तव नाम सुधा-पाने,—मत्त ह'ब ।
तव कथा भिन्न आन,—कथा ना क'ब ॥

[५५]

बची बातको कहकर बस, चुप हो जाऊँगी।
बात तुम्हारी तज न अन्य मुँहपर लाऊँगी॥
सार बना तव दिव्य नामको,
ढोऊँगी इस अस्थि-चामको,
रहकर भवन तुम्हारे तव महिमा गाऊँगी।
तव झाँकी सेवामें, तन-मन
देना, मम देवी-देवार्चन,
रेणु तुम्हारे चरणोंकी खन-खन खाऊँगी॥
जितने दिवस शरीर रहेगा,
कोई उसे न देख सकेगा,
पीकर नाम-सुधा तव पागल बन जाऊँगी।
बात तुम्हारी तज न अन्य मुँहपर लाऊँगी॥

[५६]

तोमार ए घरबाड़ी,—वैकुण्ठ मम ।
नदे' धाम वृन्दाबन,—बरज सम ॥
तोमार जनमभूमि,
अपार प्रेमेर खनि,
नव नव सुषमाय,—कान्ति कम ।
तोमार शयन-घर,
से मोर ठाकुर-घर,
तोमार पादुका निति,—करिब नम ॥
धरि' भिखारिणी साज़,
तोमार दासीर काज,
करिबे ए दासी तव,—हर हे तम ।
तोमार ए घर बाड़ी,—वैकुण्ठ मम ॥

[५६]

यह घर-बार तुम्हारा है वैकुण्ठ-लोक मम।
नदिया-ग्राम धाम-वृन्दावन, गोकुल-व्रज सम ॥
भूमि जहाँ तुम हुए अवतरित,
खान प्रेमकी सीमा-विरहित,
नव-नव सुषमामय, सकान्ति, कमनीय, मनोरम।
जो है शयनागार तुम्हारा,
बना वही मम ठाकुरद्वारा,
नित्य करूँगी नमन पादुकाको तव सनियम ॥
भिखारिणीका बाना धारे,
जो दासी-कर्त्तव्य तुम्हारे,
उन्हें करेगी दासी तव यह हे! हर लो तम।
यह घर-बार तुम्हारा है वैकुण्ठ-लोक मम ॥

[५७]

तुमि त थाकिते पार,—नदीया छाड़ि' ।
आमि जे छाड़िते नारि,—तोमार बाड़ी ॥
नदीयार चाँद नाइ,
आँधार ह'येछे ताइ,
आँधारे आँधारे डुबि',—तोमारे ढुँड़ि ।
तोमार घरेर माझे,
आमार पातान' सेजे,
राते गिये देखि तोमा,—करिये चुरि ॥
काँदिया काँदिया जाइ,
यदि वा दरश पाइ,
आमि जे तोमारि नाथ,—अबला नारी ।
आमि जे छाड़िते नारि,—तोमार बाड़ी ॥

[५७]

देखो ! तुम तो रह सकते हो नदिया तज कर ।
तज सकती हूँ भला तुम्हारा मैं कैसे घर ?
गया सुधाकर छिप नदियाका,
तम छाया अतएव अमाका,
तुम्हें ढूँढती अंधकारमें डुबकी खाकर ।
प्रभो ! तुम्हारे घरके भीतर,
अपने हाथ रची शय्यापर,
तुम्हें देखती हूँ छिपकर रजनीमें जाकर ॥
जाती करती-करती क्रन्दन,
मिल ही जाय कदाचिद् दर्शन,
अबला नारी दीन तुम्हारी मैं प्राणेश्वर ।
तज सकती हूँ भला तुम्हारा मैं कैसे घर ?

[५८]

(केन) नदीयार अवतार,—तोमारे बले ?
(ओगो) नदे'वासी काँदाइया,—कोथाय गेले ?
जेखाने सेखाने थाक,
नदे'वासी मने रेख,
भूलिबे ना तोमा, ता'रा,—प्राणे मरिले ॥
नदीयार समाचार,
क'ब कि तोमारे आर,
बलिते सकल कथा,—पराण ज्वले ॥
नदीया-निवासी जन,
ह'येछे मरार मत,
दुखेर पाथारे तुमि,—रेखे'छ फेले'।
(केन) नदीयार अवतार,—तोमारे बले ?

[५८]

नदिया का अवतार तुम्हें कहते हैं क्यों जन ?
कहाँ गये नदियावासी जनको दे क्रन्दन ?
तुम चाहे जहाँ निवास करो,
नदिया-जनको निज चित्त धरो,
वे भूलेंगे तुम्हें न होकर भी गत-जीवन ।
नदियापुरका समाचार सब,
क्या तो तुम्हें सुनाऊँ मैं अब,
जलने लगते प्राण, करूँ जो सबका वर्णन ।।
नदियावासी जन बेचारे
मृतक समान हुए हैं सारे,
दुःख-सिन्धुमें तुमने सबका किया विसर्जन ।
नदिया का अवतार तुम्हें कहते हैं क्यों जन ?

[५६]

करुणार अवतार,—नाम तोमार।
(ओगो) करुणा करिया लह प्राण आमार॥
कि काज जीवने मम,
ओहे प्राणप्रियत्तम !
नाहि जे जीवने आशा,—तोमाके पा'बार
दयार सागर तुमि,
करुणार पात्री आमि,
कृपा करि' प्राण लह,—ओहे प्राणाधार !
सकलि ल'येछ तुमि,
आछे मात्र प्राणखानि,
तोमार चरणे ताहा,—दिनु उपहार।
करुणार अवतार,—नाम तोमार॥

[५६]

करुणाके अवतार तुम्हारा नाम विदित है।
ले लो मेरे प्राण, यही करुणापेक्षित है॥
भला, काम क्या जीने से मम,
हे मेरे प्राणोंके प्रियतम !
पुनर्मिलनकी तुमसे जब आशा वर्जित है।
तुम हो उदार, करुणा-अर्णव,
हूँ पात्री मैं करुणाकी तव,
कृपया प्राणाधार ! प्राण ले लो, मम हित है॥
ले ली है तुमने वस्तु सभी,
पर प्राण-मात्र हैं बचे अभी,
चरणोंमें उपहार तुम्हारे यह अर्पित है।
करुणाके अवतार तुम्हारा नाम विदित है॥

[६०]

चरणदासी जे प्रभु !—आमि तोमारि' ।
दासीत्व काड़िया निले,—किवा विचारि' ?
कि सुखे संसारे थाकि,
कि हेतु पराण राखि,
किसेर आशाय आमि,—जीवन धरि ?
तोमार मायेर तरे,
आमारे राखिले घरे,
कि करे' यतंन क'रे,—सेवा जे करि ?
प्राणे मोर प्राण नाइ,
कि करि, कोथाय जाइ,
अबला सरला आमि,—कुलेर नारी ।
चरणदासी जे प्रभु !—आमि तोमारि' ॥

[६०]

प्रभो ! तुम्हारी दासी मैं पद-सेवा-लीना ।
क्या विचारकर तुमने यह दासी-पद छीना ?
रहूँ जगतमें किस सुखके हित,
रखूँ प्राण किस हेतु सुरक्षित,
किस आशा को लेकर होगा मेरा जीना ?
मैयाकी करनेको सँभाल,
तुम घरमें मुझको गये डाल,
पटु सेवा-विधि सीखूँ हो किस यत्नाधीना ?
प्राणोंमें रही न चेतनता,
क्या करूँ, कहाँ जाऊँ न पता,
कुल-नारी हूँ सरल-स्वभावा, मैं बल-हीना ।
प्रभो ! तुम्हारी दासी मैं पद-सेवा-लीना ॥

[६१]

आर कि बलिब तोमा,—हे गुणनिधि !
कि पापे ए ताप मोरे दिल गो विधि ?
नदीयार राजा तुमि,
राजार घरणी आमि,
मनेर दुखेर मोर,—नाहि अवधि ।
पेये निधि हारा'लाम,
बुझिया ना बुझिलाम,
असीम अतल मोर,—दुख-पयोधि ॥
जत जत दिन जाय,
तत बाढ़े हाय हाय,
(ओगो) बल तुमि दुख जाय,—मारिले यदि ?
आर कि बलिब तोमा,—हे गुणनिधि !

[६१]

और बात क्या तुम्हें कहूँ मैं अब हे गुणनिधि !
कौन पाप जो जला रहा मुझको इस विधि विधि ?
नदियाके तुम राजा मानी,
मैं राजाके घरकी रानी,
मनमें मेरे दुःख-घटाएँ छायीं निरवधि।
पायी निधि फिर उसे गँवायी,
समझी, फिरभी समझ न पायी,
सीमा-रहित अथाह तथा मम दुःख-पयोदधि ॥
बीते जाते हैं जितने दिन,
हाय-हाय उतनी ही अनगिन,
बोलो क्या तर जाऊँगी मरकर दुख-वारिधि ?
और बात क्या तुम्हें कहूँ मैं अब हे गुणनिधि !

[६२]

(जेन) जनम जनमान्तरे,—पाइ तोमारे ।
एइ वर दाओ नाथ,—तुमि आमारे ॥
इह जनमेर सुख—
तोमार से हासिमुख,
आर ना हेरिब कभु पराण भ'रे ।
(मोर) ए दुखेर नाहि ओर,
हृदये यातना घोर,
सहितेछि निशि दिशि,—बसिया घरे ॥
इच्छा करे प्राण दिया,
तोमार ए विष्णुप्रिया,
जुड़ाय हृदय-ज्वाला,—जनम तरे ।
(जेन) जनम जनमान्तरे,—पाइ तोमारे ॥

[६२]

पाऊँ तुमको जब-जब जन्मू जहाँ-जहाँपर।
मुझको दो तुम नाथ ! दया कर एक यही वर ॥
था मेरे इस जीवनका सुख
हँसता हुआ तुम्हारा वह मुख,
अब न जिसे मैं देख सकूँगी कभी प्राण भर।
मेरे न दुःखका ओर-छोर,
यातना हृदयके बीच घोर,
घरमें बैठ तुम्हारे सहती हूँ निशि-वासर ॥
इच्छा है बस, प्राणों को तज,
विष्णुप्रिया यह तव पदकी रज,
ले आजीवन हृदय-हुताशनको शीतल कर।
पाऊँ तुमको जब-जब जन्मूँ जहाँ-जहाँ पर ॥

[६३]

तोमार चरण-तरि,—करि' भरसा।
बलिब ना कारो मोर दुखेर दशा॥
तुमि गेछ छाड़ि घर,
आमि जे ह'येछि पर,
(ओगो) डूबे' जे गियाछे मोर,—सकल आशा।
तोमार सन्न्यास-कथा,
दितेछे सबारे व्यथा,
से दुख वर्णिते मोर,—नाहिक भाषा॥
(तादेर) दुखेर उपरे दु'ख,
जननीर भाङ्गा बुक,—
(आर) आमार नयन जल,—धारा बरिषा।
बलिब ना कारो मोर दुखेर दशा॥

[६३]

करके आस-भरोसा तव पदकी नौकाका।
वृत्त कहूँगी किसीको न निज दुःख-दशाका ॥
तुमने तो तज आवास दिया,
हो गयी परायी विष्णुप्रिया,
डूब गया तारा मेरी सारी आशाका।
तव संन्यासी बाना धारण,
सबकी घोर व्यथाका कारण,
अक्षम वह दुःख कहनेमें स्वर मम भाषाका ॥
दुःख-भवन पर दुःख-पताका,
चूर-चूर वक्षस्थल माँका,
नयन-नीरने मेरे रूप धरा वर्षाका।
वृत्त कहूँगी किसीको न निज दुःख-दशाका ॥

[६४]

जे देखे से प्राणे मरे,—एइ त ज्वाला।
आमि कि सहिते पारि,—अबला बाला ?
शुनि सदा हाय हाय,
दुखे बुक फेटे जाय,
मा'येर क्रन्दने लागे,—कानेते ताला।
कि आर तोमारे क'ब
ए जनमे दुख स'ब
(मोर) अङ्गेर भूषण तव,—विरह डाला॥
(आमि) ज्वलि ता'ते क्षति नाइ,
श्रीचरणे दिओ ठाँइ,
प'रेछि यतने आमि,—दुखेर माला।
जे देखे से प्राणे मरे,—एइ त ज्वाला॥

[६४]

जो विलोकता, मरने लगता, यह वह ज्वाला ।
कैसे मैं सह सकती इसको अबला बाला ?
निशि-दिन हाहाकार श्रवणकर,
छाती फटती हैं दुःखसे भर,
माँका क्रन्दन सुन लगता कानों में ताला ।
तुमको अब क्या और कहूँगी,
इस जीवन भर दुःख सहूँगी,
मम तनका तव विरह-भेंट शृंङ्गार निराला ।।
क्या क्षति यह कभी न आग बुझे,
चरणोंमें देना ठौर मुझे,
पहन यत्नसे रक्खी मैंने दुखकी माला ।
जो विलोकता, मरने लगता, यह वह ज्वाला ।।

[६५]

आमार साधन-धन,—चरण तव।
ना पा'न धेयाने जाहा,—विरिञ्चि भव॥
ए धन हाराये' आमि,
ह'येछि गो पागलिनी,
दुख-ज्वाला सहितेछि,—नित्य नव।
शेष कथा ब'ले राखि,
अन्तिमे दिओ ना फाँकि,
दासीरे चरणे रेखो'—हे भगवः!
जगतेर नाथ तुमि,
अबला बालिका आमि,
मरम यातना आर,—कत वा क'ब?
आमार साधन-धन,—चरण तव॥

[६५]

देव ! तुम्हारा चरण-कमल मेरा साधन-धन।
नहीं ध्यानमें जिसको पाते शिव-चतुरानन॥
खो करके मैं यह अपना धन,
हूँ अब गयी परम पगली बन,
दुःखानल सहती रहती हूँ निरवधि नूतन।
करती अन्तिम् बात निवेदन,
अंत समय करना न प्रवञ्चन,
भवधवे ! चरणोंमें रखना अनुचरी अकिञ्चन॥
तुम स्वामी जगतीके सारी,
मैं अबला बालिका बिचारी,
मर्म-व्यथाका कितना और करूँगी वर्णन ?
देव ! तुम्हारा चरण-कमल मेरा साधन-धन॥

[६६]

(मोरे) शेल करि' रेखे गेले,—मायेर बुके ।
(आमि) मुख जे देखा'ते नारि,—मनेर दुखे ॥
कि खेला खेलिले तुमि,
बल देखि गुणमणि,
मायेर दशभ दशा,—देख ना चोखे ।
दु'टि भाइ च'ले गेले,
दुखिनी जननी फेले,
आमि जे अबला नारी,—केइ वा देखे ?
चाहिले ना मा'र मुख,
बुझिले ना मा'र दुख,
दिले ना गो अन्न पानि,—पियास भुखे ।
(ओगो) मुख जे देखाते नारि,—मनेर दुखे ॥

[६६]

मुझे गये रख माँके उरका शूल बनाकर।
दिखा नहीं सकती मुख भी मनमें दुखसे भर ॥
तुमने खेला खेल कौन यह,
गुणमणि! समझा दो मुझसे कह,
देख न जाओ दशम दशा मैयाकी आकर।
चले गये तुम दोनों भ्राता,
तज वेचारी दुखिया माता,
अबला मैं तो, कौन ध्यान फिर देता माँ पर?
नहीं निहारा मैयाका मुख,
और न समझा मैयाका दुख,
क्षुधित-तृषितको दिया न भोजन या जल लाकर।
दिखा नहीं सकती मुख भी मनमें दुखसे भर ॥

[६७]

सुखे थाक गुणमणि,—एइ वासना।
इहा विना अन्य मोर,—नाहि कामना॥
जखन जेखाने थाक,
दासी वले' मने रेख;
चरणेर रज दिते,—जेन भूल ना।
मन्द-भागिनी व'ले,
वञ्चिता करिले छले,—
सेवा-अधिकारे तव,—केन वल ना?
चरणेर रज दिते,
आन यदि कर चिते,
इहार अधिक आर,—किवा करुणा?
सुखे थाक गुणमणि,—एइ वासना॥

[६७]

गुणमणि ! सुखसे रहो, यही अब एक वासना ।
इसके सिवा नहीं कोई मम अन्य कामना ॥
जब-जब भी जहाँ रहो-विहरो,
अनुचरी समझ मन बीच धरो,
तथा न भूलो मुझको पद-रज-भीख डालना ।
मंदभागिनी मुझे निहारा,
किया वञ्चिता छलके द्वारा,
निज सेवाधिकारसे, कारण कहो क्या बना ?
देनेमें पद-रज भी पावन,
आनाकानी करता यदि मन,
होगी इससे अधिक और क्या करुण यातना ?
गुणमणि ! सुखसे रहो, यही अब एक वासना ॥

[६८]

ए जनम भरि आमि,—काँदिब हेथा।
मरिले ओ नाहि जावे,—मरम-व्यथा॥
विधि ह'ल मोरे बाम,
पेये निधि हारा'लाम,
कारेइ वा बलि आमि,—ए दुख कथा।
त्रिजगते नाहि ठाँइ,—
मनेर मानुष नाइ—
कि पापे ए ताप मोरे,—दिला विधाता?
तोमार रमणी ब'ले,
जेते नारि नीलाचले,
कि तोमा बलिब आर,—आमार माथा?
(मोर) मरिले ओ नाहि जावे,—मरम व्यथा॥

श्रीश्रीविष्णुप्रियावल्लभाय
समर्पणस्तु॥

[६८]

अब मैं यहाँ रहूँगी रोती सदा जन्म भर।
मरनेपर भी चढ़ा रहेगा मर्म-व्यथा-ज्वर॥
विधना मेरे बायें आया,
गवाँ दिया जो धन था पाया,
किसे सुनाऊँ दुःख-कहानी यह मैं कहकर।
त्रिभुवनमें मुझे न ठौर कहीं,
समझे मनकी वह व्यक्ति नहीं,
विधिने दी यह जलन मुझे किस पाप-कर्मपर?
कही तुम्हारी गृहिणी जाती,
अतः न नीलाचल जा पाती,
अब मैं तुमको और कहूँगी क्या—अपना सर?
मरनेपर भी चढ़ा रहेगा मर्म-व्यथा-ज्वर॥

श्रीश्रीविष्णुप्रियावल्लभाय
समर्पणस्तु॥

राधाप्रेस, ६८५-ए, श्यामकुञ्ज, गांधीनगर, दिल्ली-३१ में
पं० कृष्णगोपाल शर्मा द्वारा मुद्रित ।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ-संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४	४	समाप्तप्राय:	समाप्तप्राय
१२	१०	अभिनय-छवि	अभिनव छवि
१४	२	सेक्सपीयर	शेक्स्पीयर
१४	३	हेलेनाको	हेलेनको

गीत-संख्या		पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
बंगला	३	४	पदलते	पदतले
,,	२३	८	हृदये	हृदय
हिन्दी	२४	११	पातीं	पाती
,,	२५	११	बढ़ातीं	बढ़ाती
बंगला	४३	७	सकले केन कय	सकले केन जे़ कय
हिन्दी	४३	५	ऊसपर।	उसपर।
हिन्दी	४७	११	में	मैं
,,	४८	५	में तो	मैं तो
,,	,,	११	में रही	मैं रही
,,	५०	१	में कहती	मैं कहती
बंगला	५१	४	ना देखा' कालामुख,	ना देखा'ब. कालामुख,
हिन्दी	५४	८	काल-रूपमें	काल-रूप मैं
बंगला	६१	११	मारिले	मरिले

(कृपया पीछे देखिए)

गीत-संख्या	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
बंगला ७	२	ए विधिके	ए विधि के
बंगला ३८	अन्तिम	कि काजए	कि काज ए